खण्ड: 3, अंक: 07 जुलाई 2020

संश्लेषण

डी सी आर सी हिन्दी मासिक पत्रिका

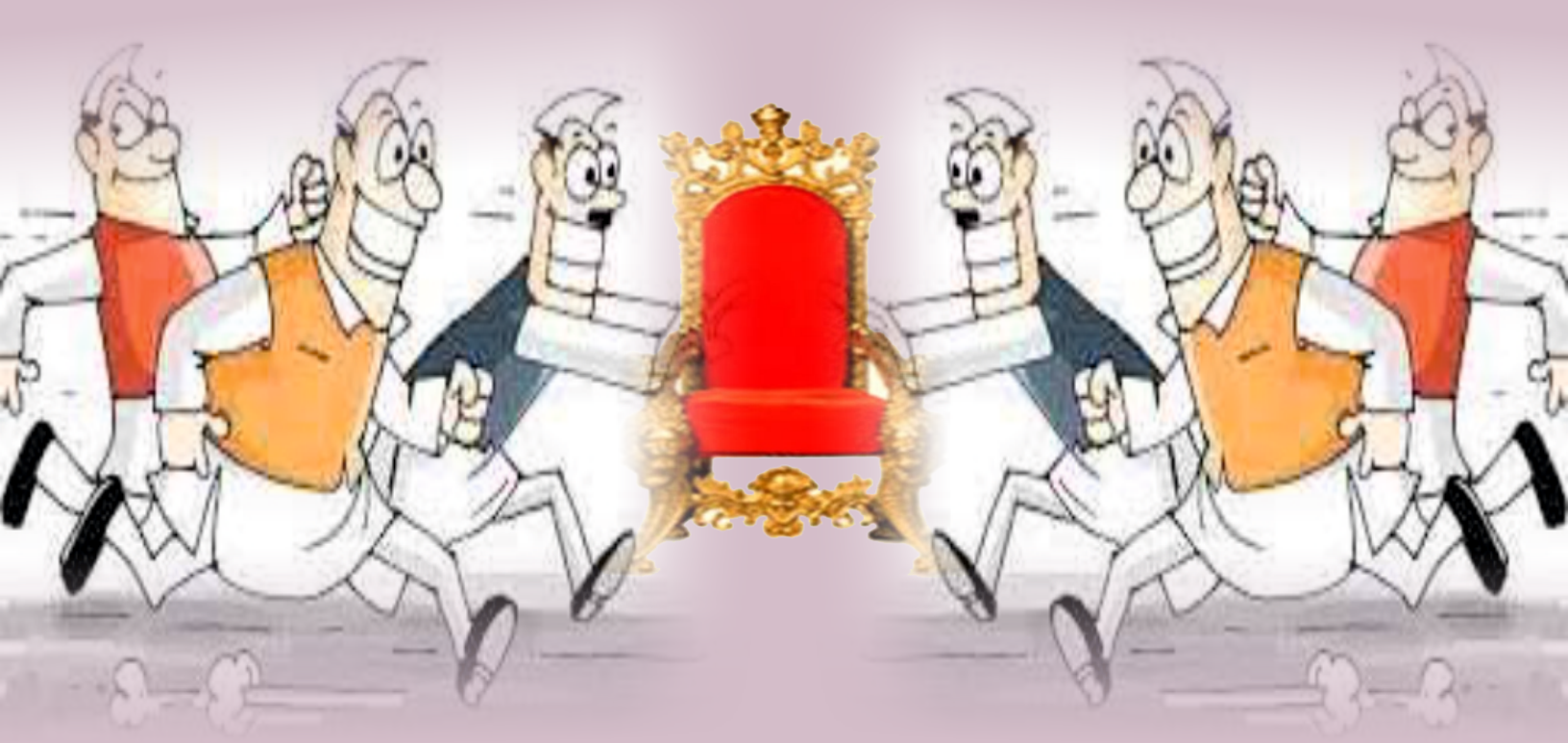

दल-बदल तथा परिवर्तनीय राज्यीय राजनीति
प्रावधान, आह्वान एवं समाधान

डी.सी.आर.सी.
विकासशील राज्य शोध केन्द्र
दिल्ली विश्वविद्यालय

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
नागेन्द्र कुमार
शरद कुमार यादव

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
कुँवर प्रांजल सिंह
आशीष कुमार शुक्ल

© डीसीआरसी 2020

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण

दल–बदल तथा परिवर्तनीय राज्यीय राजनीतिः प्रावधान, आह्वान एवं समाधान

अनुक्रमिका

संपादकीय		i-ii
1. दल–बदल विरोधी अधिनियमः एक संक्षिप्त विश्लेषण	– निशा कुमारी	1–3
2. दल–बदल विरोधी अधिनियमः औपचारिकता, व्यवहारिकता एवं प्रासंगिकता	– राम किशोर	4–7
3. भारतीय राजनीति में दल–बदल	– राकेश रंजन	8–11
4. दल–बदलः आवश्यकता अथवा स्वार्थपरता	– रजनी	12–15
5. दल–बदल की परिवर्तनीय राज्य राजनीति	– संजीव कुमार सिंह	16–19
6. दल–बदल एवं राज्य राजनीति का परिवर्तनीय स्वरूप	– मोहिनी मित्तल	20–23
7. भारतीय राजनीति में दल–बदल एवं विपक्ष की भूमिका	– सृष्टि	24–26
8. भारतीय लोकतंत्र एवं दल–बदल की राजनीति	– जया ओझा	27–30
9. वर्तमान भारतीय राजनीति में दल–बदल विरोधी अधिनियम की विफलता एवं प्रासंगिकता	– काजल	31–34
10. राजनीतिक दलों का नैतिक पतन एवं दल–बदल अधिनियम	– प्रियंका बारगल – हितेन्द्र बारगल	35–37

सम्पादकीय

शोध प्रकाशन की अपनी निर्विरोध निरंतरता के अंर्तगत संश्लेषण के वर्ष 2020 के सप्तम तथा अब तक के 24वें अंक को पाठकों के समक्ष प्रेषित करते समय हमें अपूर्व आनन्द एवं हर्ष का अनुभव हो रहा है। केन्द्र की हिन्दी मासिक पत्रिका संश्लेषण समसामयिक विषय पर शोधार्थियों के लेखों का समाज शास्त्र पर एक नवीन विमर्श का सामूहिक प्रकटीकरण है। गत तीन वर्षों से हिन्दी प्रकाशन में हमारा यह प्रयास भारत के विभिन्न भागों से अपेक्षित सहयोग एवं समन्वय द्वारा सुदृढ़ होता जा रहा है।

कोविड़–19 एवं कोरोना ने वैश्विक संकट के पश्चात वर्ष 2020 ने भारत एवं भारतीय राजनीति, विशेषकर राज्यीय राजनीति, को आंतरिक संकट से भी प्रभावित किया है। वर्ष 1985 में दल बदल की जिस मुख्य समस्या को स्वर्गीय श्री राजीव गाँधी ने दसवीं अनुसूची द्वारा संबोधित करने का प्रयास किया था, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस ने अब एक संकट का रुप ले लिया है। पिछले कुछ माह से राज्य स्तर पर राजनीतिज्ञों द्वारा दल बदल की गतिविधियों ने विभिन्न प्रकार से राज्यीय राजनीति को प्रभावित करना आरंभ कर दिया था। कर्नाटक में आंतरिक गतिरोध के पश्चात मध्य प्रदेश, मणिपुर एवं राजस्थान में सामूहिक दल बदल द्वारा शासन व सरकार के आकस्मिक परिवर्तन ने राजनीतिक स्थिरता के संदर्भ में 1980 दशक की 'आया राम, गया राम' संकल्पना को पुर्नजीवित कर दिया है।

2019 में केन्द्र स्तर पर भाजपा नेतृत्व वाली राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की पुर्नवापसी के पश्चात राज्यों में कांग्रेस के विरुद्ध राजनेताओं के जन आक्रोश ने राज्यीय परिवेश को नवीन प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कर्नाटक तथा मध्यप्रदेश में कांग्रेस से भाजपा के पक्ष में सत्ता हस्तातंरण के पश्चात् जुलाई 2020 में राजस्थान में भी केन्द्रीय एवं राज्यीय स्तर पर कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व के समक्ष एक गहन संकट उत्पन्न हो गया। यद्यपि राजस्थान की गहलोत सरकार ने दल बदल की इस आकस्मिक चुनौती को आंशिक रुप से शांत तो कर दिया, भविष्य में इसने राज्य तथा केन्द्र स्तर पर कई नए प्रश्नों को उदयित कर दिया है जिसके समाधान के लिए राजव्यवस्थाओं को आने वाले समय में संघर्षरत रहना पडेगा।

विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र ने 'दल बदल तथा परिवर्तनीय राज्यीय राजनीतिः प्रावधान, आह्वान एवं समाधान' विषय पर लेख आमंत्रित किये। दस उत्कृष्ट लेखों को

सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख मौलिक होने के साथ–साथ दल बदल के विभिन्न प्रावधानों एवं समाधानों को भी संबोधित करने का प्रयास कर रहे हैं। स्वतंत्र चिंतन पर आधारित लेखकों के विचार उनकी रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को भी इंगित करते हैं।

वर्ष 2020 के संश्लेषण के इस जुलाई माह के सप्तम अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर ही हम अगस्त माह के अपने अष्टम समसामयिक तथा महत्वपूर्ण अंक में और अधिक गुणात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करेंगे।

संपादक मंडल

शनिवार, 5 सितम्बर 2020

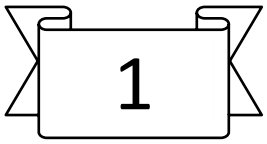

दल–बदल विरोधी अधिनियमः एक संक्षिप्त विश्लेषण

निशा कुमारी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

लोकतंत्र को सुनिश्चित करने का एक मूल आधार स्वतंत्र तथा निष्पक्ष रूप से सम्पादित चुनाव है जिसके माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों को सरकार तथा संसद में शामिल होने का जनादेश देती है। राजनीतिक दल इस पूरी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग होते है। भारतीय राजनीति के इतिहास का अध्ययन यह बताता है कि मतदाताओं के मतदान के स्वभाव को प्रभावित करने वाले कारकों (क्षेत्रवाद, धर्म, उदारवाद) में अन्य पिछड़ा वग का उभरना सर्वप्रमुख है।

इन्होने एक दल के प्रभुत्व की व्यवस्था की समाप्ति को सहज बनाया तथा राज्यों में केंद्र से भिन्न दलों के उभरने तथा सत्ता में स्थान प्राप्ति का अवसर प्रदान किया। स्वतंत्र भारत के चुनावी इतिहास में वर्ष 1967, 1977 और 1989 निर्णायक मोड़ है जिसने केंद्र और विभिन्न राज्यों में वैकल्पिक दलीय व्यवस्था का विकास आसान बनाया। 1967 में कांग्रेस प्रणाली की समाप्ति के साथ ही दल बदल की घटनाओं की शुरुआत देखी जा सकती है।

मुख्य रूप से दल बदल सम्बन्धी 'आया राम, गया राम' उक्ति भारतीय राजनीति में तब प्रचलित हुई जब 1967 में हरियाणा के एक विधायक ने एक दिन में तीन बार पार्टी बदली। अवसरवादी राजनीति के विस्तार के साथ देश में ऐसी घटनाएं भी तेज होने लगी थीं। 1980 के दशक में हरियाणा में तो यह हाल था कि वहां के तत्कालीन राज्यपाल जीडी तापसे को कहना पड़ा कि राज्य में विधायक इस तरह पार्टियां बदल रहे हैं जैसे कोई कपड़े बदलता है।

इस प्रथा को समाप्त करने के लिए 1985 में 52 वां संविधान संशोधन किया गया तथा संविधान में 10 वी अनुसूची जोड़ी गयी। जिसे 2003 में 91वें संविधान संशोधन द्वारा और कठोर बनाया गया। यह अधिनियम दल बदल करने वाले सदस्यों को अयोग्य सिद्ध करने की विभिन्न स्थितियों को परिभाषित करता है।

मुख्य प्रावधान

• दल बदल विरोधी अधिनियम के अंतर्गत किसी जन प्रतिनिधि को अयोग्य घोषित किया जा सकता है, यदिः– 1. एक निर्वाचित सदस्य स्वयं से किसी राजनीतिक दल को सदस्यता छोड़ देता है। 2. किसी सदस्य द्वारा सदन में पार्टी के पक्ष क विपरीत वोट किया जाता है। 3. कोई सदस्य स्वयं को वोटिंग से प्रथक रखता है। 4. छह महीने की समाप्ति के पश्चात् कोई मनोनीत सदस्य किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है। 5. 52वें संविधान संधोधन से बने मूल अधिनियम में यह प्रावधान था कि यदि किसी पार्टी के एक तिहाई विधायक या सांसद अलग होते हैं तो उनकी सदस्यता नहीं जाएगी परन्तु इसके पश्चात् भी बड़े स्तर पर दल–बदल की घटनाएं निरंतर रहीं। परिणामस्वरूप 2003 में संविधान में 91वां संशोधन किया गया और दल–बदल अधिनियम में परिवर्तन किया गया। अब वर्तमान अधिनियम के अनुसार यदि किसी पार्टी के कम से कम दो तिहाई सदस्य प्रथक होकर कोई गुट बना लें या किसी दुसरे दल में सम्मिलित हो जायें तो उनकी सदस्यता नहीं जायेगी। 6. दसवीं अनुसूची के अनुसार दल–बदल के विषय में निर्णय लेने का अधिकार सदन के अध्यक्ष को दिया गया है।

वर्तमान समय में राजस्थान की राजनीति में हो रहे उथल पुथल के कारण यह अधिनियम एक बार फिर विचार–विमर्श के केंद्र में आ गया है। दल–बदल विरोधी अधिनियम में यह प्रावधान था कि सदन के मुखिया द्वारा उठाए गए कदमों की कोई न्यायिक समीक्षा नहीं हो सकती। किन्तु 1992 में एक विषय की सुनवाई करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने इसे रद्द कर दिया। यद्यपि न्यायालय ने यह भी कहा कि न्यायिक हस्तक्षेप तभी होना चाहिए जब सदन का अध्यक्ष अपना निर्णय दे चुका हो।

विचारणीय प्रश्न

दल–बदल विरोधी अधनियम का अध्ययन कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाता है, जिस पर विचार करने की आवश्यकता है।

दल–बदल विरोधी अधिनियम का एक पक्ष नैतिकता से भी सम्बंधित है। सरकारों की स्थिरता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निर्मित यह अधिनियम सदन में वोटिंग के दौरान विधायकों या सांसदों को अपने विवेक अथवा अपने मतदाताओं के हितों के हिसाब से फैसला करने से भी रोकता है। संसद या विधानसभा का कार्य सरकार पर नजर रखना है, और यदि किसी सदस्य को उसकी पार्टी सदन में किसी वाद–विषय के समर्थन में या इसके विरूद्ध वोट करने के लिए

बाध्य करती है तो वह बात इस मूल भावना के विपरीत जाती है। दल–बदल विरोधी अधिनियम मात्र उन विषयों में लागू होना चाहिए जिन पर वोटिंग से किसी सरकार की स्थिरता पर असर पड़ता हो।

संवाद लोकतंत्र का अभिन्न हिस्सा है। इसलिए जे. एस. मिल ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अधिक महत्वपूर्ण माना है। दल बदल अधनियम के कारण किसी दल के अंतर्गत के लोकतंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ने की पूरी सम्भावना निहित है। क्योंकि इससे पार्टी लाइन से अलग राय रखने वाले किसी सांसद या विधायक को स्वयं को अभिव्यक्त करना कठिन हो जाता है।

♦♦♦♦♦

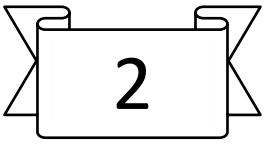

दल–बदल विरोधी अधिनियमः औपचारिकता, व्यवहारिकता एवं प्रासंगिकता

राम किशोर

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय राजनीति में आचरण की शुचिता एवं वचारिक प्रतिबद्धता का लोप हुए बहुत समय हो चुका है, इसलिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक दल–बदल की सूचनाएँ अब किसी को भी आश्चार्यचकित नहीं करती हैं। हां, इस बात का बोध अवश्य होता है कि सात दशक पूर्ण हा चुके हमारे लोकतंत्र के अनुभव ने देश की राजनीति को पतन के किस दलदल में लाकर खड़ा कर दिया है। पूर्व के दिनों में कर्नाटक, मध्य प्रदेश, मिजोरम आदि एवं वर्तमान में राजस्थान राज्य विधायकों के सामूहिक दल–बदल के चलते राजनीतिक अस्थिरता के शिकार हो चुके हैं। वैसे जनतांत्रिक राजनीति में दल–बदल अपने आप में कोई बुराई नहीं है। एक खुले एवं लोकतांत्रिक समाज में हर व्यक्ति की अपनी सोच एवं समझ होती है और वह उसे कभी भी परिवर्तित करने का अधिकार रखता है। अगर विचारों में परिवर्तन को सिरे से ही बुराई मान लिया जाए तो यह उस व्यक्ति के अधिकार का हनन या उसमें हस्तक्षेप करना होगा। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की राजनीति में दल–बदल के ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं, जिनसे इस अधिकार की मात्र पुष्टि ही नहीं हुई है अपितु हमारा लोकतंत्र भी परिपक्व हुआ है।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी एवं भारतीय जनता पार्टी के पूर्व संस्करण भारतीय जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी अपने समय में देश के शीर्ष राजनेताओं में वर्णित किए जाते थे। वे अधिक समय तक कांग्रेस स जुड़े रहे। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को तो कांग्रेस ने ही देश का प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल बनाया एवं बाद में मद्रास प्रांत का मुख्यमंत्री भी। डॉ. मुखर्जी भी स्वतंत्रता के पश्चात जवाहरलाल नेहरू की सरकार में मंत्री थे, लेकिन दोनों ही नेताओं को वैचारिक मतभेदों के चलते बाद में कांग्रेस से प्रथक होना पड़ा। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कांग्रेस से प्रथक होकर स्वतंत्र पार्टी का गठन किया और डॉ. मुखर्जी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सहायता से भारतीय जनसंघ की स्थापना कर ली। कांग्रेस से ही जुड़े एक अन्य विद्वान राजनेता मीनू मसानी भो कांग्रेस से नाता तोड़कर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की स्वतंत्र पार्टी में सम्मिलित हुए थे।

इसके पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर रहे समाजवादी धड़े के आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया आदि नेताओं ने तो बड़ी संख्या में अपने समर्थकों के साथ कांग्रेस छोड़कर सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया था। उसी दौर में महात्मा गांधी के अनन्यतम अनुयायी आचार्य जेबी कृपलानी ने भी कांग्रेस से नाता तोड़कर किसान मजदूर प्रजा पार्टी बनाई थी, जो बाद में सोशलिस्ट पार्टी में विलीन हो गई थी। ये सभी दल–बदल किसी न किसी विचार और आदर्श पर आधारित थे, न कि महज सत्ता प्राप्ति के लक्ष्य से प्रेरित।

वस्तुतः सन् 1967 के आम चुनाव तक दल–बदल को राजनीतिक प्रक्रिया का एक सामान्य अंग ही माना जाता था। यह एक रोग या अनिवार्य बुराई है, यह धारणा उस वर्ष विधानसभा चुनावों के बाद जो कुछ हुआ, उसके कारण विकसित हुई। आज यह बुराई एक भयावह और चिंताजनक रूप ले चुकी है। देश के किसी भी राज्य एवं किसी भी दल की राजनीति इस बीमारी से अछूती नहीं है।

1967 में विभिन्न राज्यों में व्यापक स्तर पर हुई दल बदलने और पार्टी तोड़ने की घटनाओं ने निर्वाचित सदनों की पवित्रता नष्ट कर उन्हें जनप्रतिनिधियों के नीलामीघर में परिवर्तित कर दिया। उसके पश्चात् तो ऐसी घटनाएं सामान्य हो गईं। दल बदलने और पार्टी तोड़ने की घटनाएं अक्सर सरकार गिराने या अल्पमत की सरकार को बहुमत वाली सरकार में परिवर्तित करने के लिए तो होती ही हैं, इसके अतिरिक्त चुनावों के समय टिकट वितरण के समय एवं चुनाव के पश्चात् स्पष्ट जनादेश के अभाव में जोड़–तोड़ से सरकार बनाने के लिए भी अधिक होती हैं। राजनीति में सक्रिय लोगों के लिए अपनी पार्टी की विचारधारा या राजनीतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा अब उपहास की वस्तु बनकर रह गई है। तात्कालिक राजनीतिक लाभ ही सबसे बड़ा राजनीतिक मूल्य हो गया है।

1967 में दल–बदल के माध्यम से राज्यों में शुरू हुआ सरकारें गिराने–बनाने–बचाने का खेल बाद के वर्षों में लगातार विकसित होता गया। इस खेल को समाप्त करने के लिए पहली बार उस समय गंभीरतापूर्वक विचार–विमर्श किया गया, जब आठवें आम चुनाव में कांग्रेस ने राजीव गांधी के नेतृत्व में तीन–चौथाई से अधिक बहुमत प्राप्त कर सरकार बनाई। राजीव गांधी की सरकार ने दल–बदल पर पाबंदी लगाने के लिए 52वें संविधान संशोधन के द्वारा दल–बदल विरोधी अधिनियम संसद में पारित कराया। यद्यपि इस अधिनियम को पारित कराने को लेकर राजीव गांधी की दृष्टि पर प्रश्न भी उठे। कई लोगों ने इसे उनके 450 से अधिक सांसदों के भारी–भरकम बहुमत की सुरक्षा के लिए उठाया गया कदम माना।

इस अधिनियम में सबसे बड़ी विसंगति यह थी कि इसके द्वारा व्यक्तिगत दल–बदल पर तो रोक लगाई गई किन्तु थोक में ऐसा करने को वैधानिक मान्यता दे दी गई। प्रारम्भ में इस अधिनियम में यह प्रावधान था कि यदि किसी दल के एक–तिहाई विधायक या सांसद दल बदलते हैं तो उनका यह कार्य दल–बदल नहीं अपितु दल–विभाजन माना जाएगा। आगे चलकर यह संख्या पचास प्रतिशत और फिर दो–तिहाई कर दी गई।

जिस समय यह विधेयक पारित किया जा रहा था, संसद के भीतर लगभग सभी दलों ने इसका समर्थन किया था, यहां तक कि जनता पार्टी के सांसद और वरिष्ठ समाजवादी नेता प्रो० मधु दंडवते ने भी इसे ऐतिहासिक कार्य कहा था। लेकिन समाजवादी चिंतक एवं संसद विद्वान मधु लिमये एकमात्र ऐसे नेता थे, जिन्होंने समाचार–पत्रों में अपने लेखों के माध्यम से इसके प्रावधानों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए स्पष्ट कहा था कि इस अधिनियम से दल–बदल नहीं रुकेगा। उनका कहना था कि यह अधिनियम खुदरा दल–बदल को तो रोकता है, मगर थोक में हुए दल–बदल को वैधता प्रदान करता है। दल–बदल विरोधी अधिनियम बनने के कुछ वर्षों पश्चात् ही यह साफ हो गया कि यह अधिनियम अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल है और आज तो यह अधिनियम न केवल अस्वीकृत हो गया है, अपितु इसने हमारे संसदीय लोकतंत्र में विभिन्न प्रकार की विकृतियों को जन्म दे दिया है।

वस्तुतः दल–बदल विरोधी अधिनियम में दो–तिहाई सदस्यों का एक साथ प्रथक होना आवश्यक करार दिए जाने के बावजूद इस अधिनियम का उपहास इसलिए बनाया जाने लगा है क्योंकि इस अधिनियम को लागू करने का दायित्व सदन के अध्यक्ष का है और विधानसभा अथवा लोकसभा अध्यक्ष भी सत्तारुढ अथवा बहुमत प्राप्त दल के ही अपरोक्ष रूप से सदस्य होते हैं। उनके द्वारा सरकार को बचाने के लिए सामान्य दल–बदल विरोधी अधिनियम का मनमाने तरीके से दुरुपयोग किया जाता है। दल–बदल विरोधी अधिनियम के अंतर्गत सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की याचिकाओं पर निर्णय लेने में उनके द्वारा इतना अधिक समय नष्ट कर दिया जाता है कि उनके निर्णय का महत्व ही समाप्त हो जाता है।

विधानसभा अथवा लोकसभा अध्यक्ष द्वारा अपनी पार्टी के हित एवं नेतृत्व के दिशा निर्देशानुसार कार्यवाही की जाती है, जिससे दल–बदल विरोधी अधिनियम का महत्व ही समाप्त हो जाता है। ऐसे प्रकरण में कभी–कभी राज्यपालों की उनकी अपनी राजनीतिक निष्ठाओं से प्रेरित भूमिका भी आग में घी का काम करती है। इसलिए इस अधिनियम में इस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है जिसके अनुसार सदन के अध्यक्ष को दल–बदल विरोधी अधिनियम के उल्लंघन

संबंधी याचिकाओं पर एक निश्चित समय–सीमा के अंतर्गत निर्णय लेना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। विधानसभा अध्यक्ष के निर्णय के विराध में यदि किसी सदस्य द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जाती है तो उसका निर्णय भी तत्काल उसी प्रकार दिया जाना चाहिए जिस प्रकार किसी मुकदमे में जमानत की याचिकाओं पर निर्णय दिया जाता है।

हमने चूंकि अधिकतर ब्रिटिश संसदीय जनतांत्रिक प्रणाली को अपनाया है, इसलिए संसदीय राजनीतिक क्रियाकलापों को लेकर हमारे यहां अक्सर ब्रिटिश संसद के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। ब्रिटेन की संसद में कोई भो निर्वाचित सदस्य सदन में पार्टी की विचारधारा से अपनी स्पष्ट असहमति व्यक्त कर सकता है, वह पार्टी के आधिकारिक सोच एवं समझ के विपरित मतदान भी दे सकता है। किन्तु दो अवसरों पर उसे पार्टी व्हिप का पालन अनिवार्य रूप से करना होता है, पहला अविश्वास प्रस्ताव के समय और दूसरा– वित्तीय विधेयक (मनी बिल) के समय। इसमें यदि सदस्य अपनी पार्टी के अनुशासन का पालन नहीं करता है तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। कारण यह है कि उपरोक्त दो अवसर ही हैं, जब शक्ति परीक्षण में असफल होने पर सरकार गिर जाती है अन्यथा नहीं। आज भी ब्रिटिश संसद में कोई न कोई सदस्य अपनी पार्टी के विपरित मतदान करते हैं, पार्टी बदल भी लेते हैं, पंरतु उनकी सदस्यता बनी रहती है। वहां प्रधानमंत्री रहे विंस्टन चर्चिल, हैरोल्ड मैकमिलन एवं मार्गेट थैचर जैसे कई नेता हुए हैं, जिन्होंने सांसद के रूप में अपने दलों के विपरित संसद में कई बार मतदान किया।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भारतीय राज्य व्यवस्था में दल–बदल की समस्या से उत्पन्न होने वाली राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त करने के लिए भारतीय संसद में बैठे सत्ता पक्ष एवं विपक्ष को अवसरवाद एवं स्वार्थपरकता को त्यागकर एक सीधे एवं सरल अधिनियम का निर्माण करना चाहिए।

♦♦♦♦♦

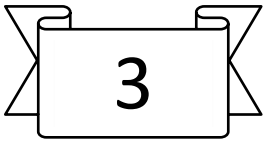

भारतीय राजनीति में दल–बदल

राकेश रंजन

शोधार्थी, [MMA Jauhar Academy of Internal Studies] जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय

भारत एक संसदीय लोकतान्त्रिक देश है जहाँ बहुदलीय व्यवस्था को अपनाया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत देश में लोकतान्त्रिक चुनाव आरम्भ हो गये। इस लोकतान्त्रिक चुनाव के साथ ही दल–बदल का भी रोग प्रारम्भ हो गया तथा समय के साथ यह निरंतर बढ़ता गया। यह दल–बदल विधायक एवं संसद सदस्य अपनी महत्त्वाकांक्षा, लोभ, लालच एवं पद की लालसा के लिए करने लगा। 1967 में गया राम नामक व्यक्ति जो कि हरियाणा का रहने वाला था उसने एक दिन तीन पार्टियाँ बदली जिसके पश्चात् भारतीय राजनीति यह घटना 'आया–राम, गया–राम, के नाम से चर्चा में आया।

इस दल–बदल के द्वारा भारत में विभिन्न सरकारें बनायी गयीं तथा कई सरकारें गिराई गयी। इससे भारतीय विकास तथा शासन व्यवस्था पर विभिन्न नकारात्मक प्रभाव पड़ा। सामान्य जनता के सामने गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, किसानों की आत्महत्या आदि समस्याएं जनता के सामने मुंह बाये खड़ी रही तथा नेता अपने स्वतंत्रता एवं निजी लाभ के लिए पार्टी बदलते रहे। दल–बदल के कारण जब सरकार गिरती है तथा बनती है तो विकास का काम प्रभावित होता है एक सरकार की प्राथमिकताएँ, विकास की योजनाएँ एवं कार्यक्रम बदल जाते हैं। कई बार तो इसके कारण राज्य में राष्ट्रपति शासन भी लगाना पड़ता है। विभिन्न विकास की योजनाएँ और कार्यक्रम अधूरे रह जाते हैं तथा भ्रष्टाचार के आरोप–प्रत्यारोप भी लगने लगते हैं। अपने–अपने समूह के विधायकों को बचाने के लिए नेतागण न्यायालय का भी शरण लेते हैं।

इस बढ़ते अव्यवस्था के मध्य राजीव गाँधी की सरकार द्वारा 1985 में दल–बदल विरोधी अधिनियम बनाया गया। इस दल–बदल विरोधी अधिनियम का मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे– यदि कोई व्यक्ति अकेले पार्टी छोड़ता है तो उसकी सदस्यता सदन से समाप्त हो जायेगी तथा पार्टी के कुल विजयी हुए विधायक या संसद सदस्य एक तिहाई सदस्य पार्टी से प्रथक होते हैं या दूसरी पार्टी में सम्मिलित होते हैं तो उसकी सदस्यता समाप्त नहीं होगी। इस व्यवस्था के कारण

बड़ी पार्टियों मं तो दल–बदल पर लगभग रोक लग गई परन्तु छोटी पार्टियों पर इसका प्रभाव अधिक नहीं पड़ सका।

यह व्यवस्था धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगा और छोटे पार्टियों में दल–बदल निरंतर रहा और इसके कारण कई सरकारें बनायी गयी और कई सरकार गिराई गयी। इस व्यवस्था के अंतर्गत छोटी पार्टी के नेताओं को पद–प्रतिष्ठा तथा लाभ मिला परन्तु सामान्य जनता के विषयों का समाधान नहीं किया जा सका। जैसे– रोजगार की समस्या, शिक्षा की समस्या, कृषि समस्या, निर्धनता की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या आदि। इस दल–बदल के कारण जिस घोषणा पत्र पर विजयो हो कर आते हैं उस पर कायम नहीं रह पाते हैं जो दल–बदल विरोधी अधिनियम 1985 में बनाया गया था वह 2000 तक आते–आते दल–बदल विरोधी अधिनियम अपूर्ण प्रतीत होने लगा।

इस कमी को पूर्ण करने के लिए 2003 में पुनः एक बार दल–बदल विरोधी अधिनियम पारित किया गया तथा इसमें प्रावधान किया गया कि अब कोई भी एक दल का दूसरे दल में मात्र विलय होगा और इस विलय के लिए यह प्रावधान रखा गया कि विधायक दल या संसदीय दल का दो तिहाई सदस्यों की सहमति आवश्यक है। यदि कोई विधायक या संसद व्यक्तिगत रूप से जिस दल से विजयी हो कर आया है उस दल से दूसरे दल में जाता है तो उसके सदन की सदस्यता समाप्त हो जायेगी तथा वह अगले छः वर्षों तक चुनाव लड़ने से वंचित रहेगा तथा सरकारी पद से भी अगले छः वर्षों तक ग्रहण नहीं करेगा।

इस व्यवस्था से बड़े राजनीति दल में दल–बदल पर रोक तो लगी है, परन्तु छोटे दलों का विलय एक दल से दूसरे दल में होता रहा जो आज भी जारी है इससे छोटे दल को नुकसान हो रहा है तथा इससे जनता के सामने राजनीतिक दलों के विकल्प में कमी होती जा रही है जबकि भारत एक बहुदलीय प्रणाली वाला संसदीय लोकतंत्रात्मक देश है।

2003 के दल–बदल विरोधी अधिनियम पारित होने के पश्चात् भारतीय राजनीति व्यवस्था में एक नई प्रवृत्ति देखने को मिली है जिसके अंतर्गत राजनीतिक दल के विधायक अपने सदन की सदस्यता से त्यागपत्र देकर दूसरे पार्टी में सम्मिलित हो जाते हैं। इससे एक पार्टी की सरकार गिर जाती है तथा दूसरे पार्टी की सरकार बन जाती है तथा दूसरे पार्टियों के द्वारा आरोप लगाया जाता है कि यह कार्य धन एवं लोभ के आधार पर कराया जा रहा है परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है। यह दल–बदल का ही विकृत रूप देखने को मिल रहा है, इससे

जुड़ी एक और आश्चर्यजनक घटना के रूप में भारतीय राजनीति में देखने को मिल रहा है कि अपने–अपने विधायकों को दूसरे दलों से बचाने के लिए महीनों–महीनों तक होटलों में रखा जाता है।

इस प्रकार की घटना यह प्रदर्शित करती है कि देश में विधायक और मंत्री स्वतंत्र और सुरक्षित नहीं तथा यह अन्देशा किया जाता है कि विधायक एवं मंत्री लोभ और लालच के शिकार हो जायेंगे और अपनी निष्ठा में बदलाव कर लेंगे। इससे भारतीय लोकतंत्र पर कई प्रश्न खड़े होते हैं। जिस देश के विधायक और मंत्री सुरक्षित एवं स्वतंत्र नहीं हैं वहाँ जनता की स्वतंत्रता कैसे सुरक्षित रहेगी? भारतीय लोकतंत्र कैसा लोकतंत्र है? जिसमें सरकार कुछ विधायकों के त्यागपत्र के पश्चात् गिरायी और बनायी जाती हैं।

इस प्रकार सरकार बनाने और गिराने के क्रम में जनता के समस्या के समाधान पर ध्यान नहीं दिया जाता है इसमें एक राजनीतिक पार्टी अपनी सरकार बनाये रखने पर पूरा ध्यान देती है न कि जनता के विकास तथा प्रगति पर तथा इससे सरकार विधायकों को अपने दल की ओर करने का प्रयास करती है। इस खेल में ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार तथा विपक्ष दोनों अपने–अपने उत्तरदायित्व जनता के प्रति भूल गये हैं।

इस दल–बदल विरोधी अधिनियम बनने से पहले भारतीय संविधान में राजनीतिक दलों का कोई उल्लेख भारतीय संविधान में नहीं था इसके पूर्व मात्र राजनीतिक दलों की मान्यता चुनाव आयोग द्वारा प्रदान की गई थी। जब 1985 में पहली बार दल–बदल विरोधी अधिनियम बना तो राजनीतिक पार्टियों का उल्लेख संविधान में आया। दल–बदल विरोधी अधिनियम बनने के बाद सदन में अध्यक्ष की भूमिका में भी बढ़ोतरी हो गयी अब प्रथम दृष्टया में सदन के अध्यक्ष को दल–बदल विरोधी अधिनियम के आधार पर सदन के सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया। सदन के अध्यक्ष द्वारा सदन के सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की घोषणा से राजनीतिक दलों के मध्य भूचाल सा आ जाता है तथा वे अक्सर इसे रोकने के लिए अदालत का सहारा लेते हैं। इस प्रकार सदन के अध्यक्ष की भूमिका दल–बदल में अहम हो जाती है तथा इसका प्रभाव प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से सरकार पर भी पड़ता है।

इस समस्या से समाधान के लिए नेताओं का उत्तरदायित्व को जनता, पार्टी तथा देश के प्रति निवर्हन करना पड़ेगा। इसके साथ ही जनता में जन जागरुकता तथा कर्त्तव्य बोध की भावना का विकास होना चाहिए जिसके कारण दल–बदल करने वाले नेता को अगले चुनाव में सबक

सिखा सके तथा जनता को जाति, धर्म, वर्ग से ऊपर उठ कर विकास एवं प्रगति के आधार पर अपना मत देना होगा जिससे समाज की समस्या जैसे – बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा, स्वास्थ्य समस्या, किसानों की समस्या का समाधान हो सकेगा तथा देश के विकास के पथ पर अग्रसर होगा।

भारतीय राजनीति में दल–बदल की समस्या जटिल एवं गंभीर प्रतीत होती है इसका प्रभाव भारतीय समाज के सभी वर्गों एवं क्षेत्रों पर पड़ रहा है। इसका व्यापक प्रभाव राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से देखने को मिल रहा है। यह भारतीय राजनीति का विकृत रूप का ऐसा जाल है जो देश एवं जनता के विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में उभर कर सामने आया है यह घटना भारत के राजनैतिक व्यवस्था की गिरती नैतिकता का प्रतीक हैं। यह भारतीय राजनैतिक व्यवस्था पर ऐसा विकृत रूप है जो भारतीय समाज को झकझोरता है एवं विचार करने पर विवश करता है इस समस्या का समाधान नेताओं के ईमानदारी, कर्मठता एवं राज्य, समाज एवं पार्टी के प्रति पूर्ण कर्तव्यनिष्ठा तथा नागरिकों के राजनैतिक एवं जनजागरुकता से समाप्त किया जा सकता है।

♦♦♦♦♦

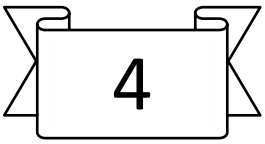

दल–बदलः आवश्यकता अथवा स्वार्थपरता

रजनी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत का सविधान सर्वोच्च होने के कारण आए दिनों संविधान की दसवीं अनुसूची सबसे अधिक विचार–विमर्श का विषय बनी रहती है, विशेषरूप से जब चुनाव हर क्षेत्र में होते हैं, या जब सरकार को बहुमत का नुकसान दिखा कर प्रत्याशित किया जाता है और विधायक या सांसद, जैसा भी मामला हो, संविधान की दसवीं अनुसूची में वर्णित दल–बदल विरोधी अधिनियम लागू करके दलबदल के आधार पर अयोग्य ठहराया जा सकता है। किसी सदस्य को उस समय दोषी कहा जाता है जब राजनीतिक निष्ठा का परिवर्तन होता है, जिस पार्टी से उसे विधान सभा में प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया है। दलबदल विरोधी अधिनियम को 52वें संविधान संशोधन, 1985 के द्वारा लाया गया था, जो एक दल का दूसरे दल से जीतने के लिए तथा सरकार की अस्थिरता को समाप्त करने के लिए लाया गया था। इस आधार पर अयोग्यता सिद्ध करने की कुछ श्रेणियों को बनाया गया है जो इस प्रकार है–

10वीं अनुसूची के अन्तर्गत, एक विधायक को दोनों में से किसी एक विषय में अयोग्य ठहराया जा सकता हैः

- जब वह स्वेच्छा से अपनी राजनीतिक पार्टी की सदस्यता छोड़ देता है।
- जब वह अपने संबंधित राजनीतिक दल द्वारा जारी किए गए निर्देश के विरूध वोट करता है।
- स्वेच्छा से देता है

वहीं यदि इन के निर्देशों के विरूद्ध वोट किया जाए तो पार्टी व्हिप जारी कर सकती है जैसे वतमान में राजस्थान राज्य में अशोक गहलोत और सचिन पायलेट के बीच राजनीतिक गतिरोध को संदर्भित करता है, तो बहुजन समाज पार्टी ने अपने प्रेस नोट दिनांक 26.07.2020 में एक व्हिप जारी किया, जिसमें पार्टी चाहती थी कि उसके 6 विधायक यह सुनिश्चित करें कि उन विधायकों ने पार्टी के निर्देश का पालन किया है, अन्यथा अयोग्यता का सामना करना पड़ सकता है। यह विधायकों की पार्टी के प्रति निष्ठा सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है जिससे वे चुने गए हैं। यद्यपि, मात्र अस्वीकृति ही पर्याप्त नहीं है और यह निश्चित करने की अंतिम शक्ति

की क्या सदस्यों ने सदन के पीठासीन अधिकारी में निहित दोषों का पता लगाया है। इस विषय में पीठासीन अधिकारी अध्यक्ष है।

अध्यक्ष की भूमिका

अनुच्छेद 6 अयोग्य होने के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए अध्यक्ष को अधिकार देता है। अध्यक्ष एक आत्म–प्रेरक याचिका शुरू नहीं कर सकता है, यह केवल एक सदस्य द्वारा दायर याचिका के मामले में अंतिम मध्यस्थ है। न्यायालय को वस्तुतः दलबदल से बाहर रखा गया था। यद्यपि, 1992 के बाद, सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग कर सकता है जिसे बुनियादी संरचना सिद्धांत में स्थान प्राप्त है। यद्यपि, वर्तमान में न्यायालय ने अयोग्य ठहराए जाने वाली याचिकाओं को निश्चित करने के लिए तीन महीने की समय–सीमा रखी। अध्यक्ष ऐसे विषयों में न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करता है। वर्तमान ही में, मणिपुर सरकार में बैठे कुछ विधायकों ने राज्य की राजनीति में अस्थिरता उत्पन्न करने वाले विपक्ष का विरोध किया। मणिपुर में दलबदल की यह राजनीति अनोखी नहीं है, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश और उत्तराखंड में दलबदल के कुछ अन्य उदाहरण हैं।

इसी प्रकार, 1985 में, राजनीतिक दोषों को रोकने के लिए, 52वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, दलबदल–निरोध पारित किया गया और भारतीय संविधान में 10वीं अनुसूची जोड़ी गई। यद्यपि, भारतीय राजव्यवस्था में दलबदल के समकालीन उदाहरणों से पता चलता है कि अधिनियम की कमियों को दूर करने और विधायकों के अधिकारों और विधायी स्थिरता के हितों के मध्य संतुलन बनाने के लिए एक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

इस पर कृछ अन्य विषय भी देखने को मिलते है जैसे–

91वां संविधान संशोधन अधिनियम–2003 जिसका इसका उद्देश्य मंत्रियों के परिषद के आकार को सार्वजनिक कार्यालयों को रखने से बचाने के लिए और विरोधी दलबदल अधिनियम को सुदृढ़ करना है। इससे पहले, एक राजनीतिक दल के निर्वाचित सदस्यों में से एक–तिहाई का दलबदल इल विलय 'माना जाता था। संशोधन ने इसे कम से कम दो–तिहाई में बदल दिया।

किहोटा होलोहों बनाम ज़चिलु (1992) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 10वीं अनुसूची संवैधानिक रूप से मान्य है। यह न तो भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाता है और न ही निर्वाचित सदस्यों के लोकतांत्रिक अधिकारों को प्रभावित करता है। इसने

विधायकों की अयोग्यता के विषयों को निश्चित करने में अध्यक्ष को उपलब्ध व्यापक विवेक को भी बरकरार रखा। यद्यपि, यह भी माना गया कि अयोग्यता के पीठासीन अधिकारी के निर्णय न्यायिक समीक्षा के लिए खुले होंगे।

दल–बदल विरोधी अधिनियम के समक्ष चुनौतियाँः

प्रतिनिधि लोकतंत्र की सच्ची भावना के विरूद्धः दलबदल विरोधी अधिनियम यह सुनिश्चित करना चाहता है कि विधायक पक्ष न बदलें। यद्यपि, यह अधिनियम विधायकों को उनके मतदाताओं के विवेक, निर्णय और हितों के अनुरूप मतदान करने स प्रतिबंधित करता है। विधायी नियंत्रण पर प्रभावः दलबदल विरोधी अधिनियम सरकार पर विधायिका के निरीक्षण का कार्य बाधित करता है, यह सुनिश्चित करके कि सदस्य पार्टी नेतृत्व द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर मतदान करते हैं। यदि विधायक स्वतंत्र रूप से अधिनियमों पर मतदान करने में सक्षम नहीं हैं, तो वे सरकार पर एक प्रभावी जाँच के रूप में कार्य नहीं करेंगे। वास्तव में, एंटी–डिफेक्शन लॉ, कार्यकारी और विधानमंडल के बीच शक्तियों के पृथक्करण को कम करता है और अधिकारियों के हाथों में शक्ति को केंद्रीकृत करता है। घर के पीठासीन अधिकारी की भूमिका में अधिनियम यह बताता है कि विधायकों को सदन के किसी अन्य सदस्य द्वारा याचिका पर आधारित विधायिका के पीठासीन अधिकारी द्वारा दलबदल के आधार पर अयोग्य ठहराया जा सकता है। हालांकि, ऐसे कई उदाहरण हैं जब पीठासीन अधिकारी सत्ता में एक राजनीतिक पार्टी / सरकार के निहित स्वार्थों के साथ एक भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, पीठासीन अधिकारी को अयोग्य ठहराए जाने वाली याचिका पर निर्णय लेने के लिए अधिनियम एक समय अवधि निर्दिष्ट नहीं करता है।

इस प्रकार निर्णय कभी–कभी पीठासीन अधिकारी की कल्पनाओं पर आधारित होता है। विचार एवं विमर्शों को प्रभावित करता है। विचार–विमर्श के स्थान पर भारत में दल–बदल विरोधी अधिनियम ने दल एवं संख्याओं को महत्वपूर्ण मानकर लोकतंत्र को निर्मित किया है। इस प्रकार, यह असंतोष और दलबदल के मध्य अंतर नहीं करता है और किसी भी अधिनियम पर संसदीय विचार–विमर्श को कमजोर करता है।

सुझावः

दलबदल विरोधी अधिनियम का तर्कसंगत उपयोगः कई विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि अधिनियम केवल उन वोटों के लिए मान्य होना चाहिए जो सरकार की स्थिरता का निर्धारण करते हैं। जैसे वार्षिक बजट या अविश्वास प्रस्ताव पारित करना।

चुनाव आयोग की सलाहः संविधान (NCRWC) के कामकाज की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग सहित विभिन्न आयोगों ने सिफारिश की है कि पीठासीन अधिकारी के बजाय, एक सदस्य को अयोग्य घोषित करने का निर्णय राष्ट्रपति द्वारा किया जाना चाहिए (सांसदों या राज्यपाल के मामले में) (विधायकों के मामले में) चुनाव आयोग की सलाह पर।

अयोग्यता से निपटने के लिए स्वतंत्र अधिकारः होलोहन निर्णय में न्यायमूर्ति वर्मा ने कहा कि अध्यक्ष का कार्यकाल सदन में बहुमत के निरंतर समर्थन पर निर्भर है और इसलिए, वह इस तरह के स्वतंत्र सहायक प्राधिकरण की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है।

इसके अलावा, इस मामले में एकमात्र मध्यस्थ के रूप में उनकी पसंद बुनियादी सुविधा की एक आवश्यक विशेषता का उल्लंघन करती है।

इस प्रकार, दलबदल के मामलों से निपटने के लिए एक स्वतंत्र प्राधिकरण की आवश्यकता है।

इंट्रा–पार्टी डेमोक्रेसी के सिद्धांत को बढ़ावा देनाः 170वें लॉ कमीशन की रिपोर्ट ने यह तर्क देते हुए इंट्रा–पार्टी लोकतंत्र के महत्व को रेखांकित किया कि एक राजनीतिक पार्टी आंतरिक रूप से अपने कामकाज में तानाशाही और लोकतांत्रिक नहीं हो सकती है।

इस प्रकार, दलों को सदस्यां की राय को सुनना चाहिए और उसी पर चर्चा करनी चाहिए। इससे अपने सदस्यों को बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिलेगी और आंतरिक–पार्टी लोकतंत्र को बढ़ावा मिलेगा।

निष्कर्ष

यद्यपि दलबदल विरोधी अधिनियम के कारण, हमारे देश के विधायकों की ओर से निष्ठा के लगातार और अपवित्र परिवर्तन के कारण राजनीतिक अस्थिरता बहुत हद तक निहित है, फिर भी विरोधी के अधिक तर्कसंगत संस्करण की आवश्यकता है दलबदल अधिनियम जो वास्तव में प्रतिनिधि लोकतंत्र स्थापित करने में सहयोग करेगा।

♦♦♦♦♦

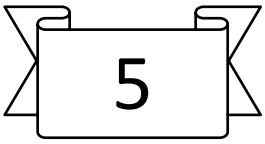

दल–बदल की परिवर्तनीय राज्य राजनीति

संजीव कुमार सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय

राजनीतिक दलों में दल–बदल का प्रारम्भ कब हुआ तथा यह किन परिस्थितियों में किया जाता है? उसमे स्टेट रिसॉर्ट पॉलिटिक्स की क्या भूमिका रही है? दल–बदल रोकने हेतु बने अधिनियम तथा उनकी कमियां आदि ऐसे प्रश्न हैं जो दल बदल को समझने हतु अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। आधुनिक राजनीतिक दलों की यदि बात की जाए तो उनका उदय 16वीं से 17वीं सदी के मध्य हुआ परन्तु ब्रिटेन में 15वीं सदी में चार्ल्स द्वितीय के समय उनके सलाहकार **Danbay** ने कॉमन सभा में राजा के समर्थक समूह का निर्माण कर लिया था जिनको बाद में राजनोतिक दल के रूप में जाना जाने लगा।

भारत के स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब 1951 में पहले आम चुनाव शुरू हुए तो इस आम चुनाव में 14 राष्ट्रीय राजनीतिक दल, 39 राज्य स्तरीय राजनीतिक दल तथा कई निर्दलीय उम्मीदवारों ने भाग लिया जिनकी संख्या (1874) थी। यदि हम दल बदल के इतिहास पर दृष्टिकोण डाले तो दल बदल का सबसे पहला उदाहरण हमें संसदीय प्रणाली के जनक ब्रिटेन में देखने को मिलता है जब कंजर्वेटिव पार्टी के नेता विंस्टन चर्चिल (1900) में सांसद बने) 4 साल बाद ही पार्टी छोड़कर लेबर पार्टी में शामिल हो गए लेकिन इसके सम्बन्ध में संसद में अपने विचार रखते हुए उन्होंने बताया की वे इस पर अपने निर्वाचकों से चर्चा अवश्य करेंगे। भारत में यदि दल बदल के इतिहास को देखा जाए तो सर्वप्रथम मोतीलाल नेहरु के भतीजे श्यामलाल नेहरु का उदाहरण हमारे सामने आता है जिन्होंने 1920 में कांग्रेस के टिकट पर चुनाव जितने के बाद ब्रिटिश खेमे में जाने का कार्य किया जिसके बाद उन्हें पार्टी से निष्काषित कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद पहले आम चुनाव के बाद 1952 में कांग्रेस को 152 और अन्य दलो को 223 सीटे प्राप्त हुई, जिसके बाद कांग्रेस पार्टी द्वारा विपक्षी पार्टी के 16 विधायकों को अपनी पार्टी में मिला लिया गया और राज्यपाल द्वारा चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना जो उस समय पार्टी के सदस्य भी नही थे राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह लगाता है।

दल बदल का नाम लेते ही सभी के मन में जिस वर्ष का नाम सबसे पहले उभरकर आता है वह है वर्ष 1967 क्योंकि ये भारतीय संसदीय इतिहास का ऐसा वर्ष है जब सबसे अधिक बार दल बदल की घटना देखने को मिली। इसमें कोई भी प्रतिनिधि किसी खास दल का चुनाव चिन्ह लेकर चुनाव जीते तथा उसके पश्चात् पार्टी बदलते हुए अन्य दलों में शामिल हो गए जिसको लेकर 1967 में ''आया–राम, गया–राम'' का वक्तव्य प्रसिद्ध हुआ।

आया राम–गया राम

1967 के चुनाव के बाद हरियाणा के एक विधायक गया लाल द्वारा राजनीतिक दल बदल का एक नया कीर्तिमान बनाया गया जिन्होंने एक पखवाड़े में तीन बार अपनी पार्टी को बदला जो कांग्रेस छोडकर यूनाइटेड फ्रंट में गये तथा फिर कांग्रेस में आए और पुनः 9 घंटे के भीतर यूनाइटेड फ्रंट में आ गए। इसी को लेकर कांग्रेस नेता राव वीरेंद्र द्वारा प्रेसवार्ता करते हुए कहा गया कि– गया राम था अब आया राम हैं। तभी से यह जुमला भारतीय इतिहास में दल बदल को लेकर हमेशा के लिए दर्ज कर लिया गया।

दल बदल के लिए प्रयोग होने वाला शब्द **Defection** वास्तव में सैन्य प्रशासन में प्रयोग होने वाला शब्द है जो कि किसी सैनिक द्वारा अपनी सेना को छोडकर दूसरी विरोधी सेना में शामिल होने को लेकर किया जाता है जिसका प्रयोग कालान्तर में दल बदल के लिए भी किया जाने लगा जिसका आधार निष्ठा को बनाया गया।

अबतक दल बदल को लेकर अनेक समितियों और आयोगों की रिपोर्ट मं दिए गए सुझावों के आधार पर संवैधानिक संशोधन द्वारा दल बदल को रोकने का प्रयास किया गया है–

1990 की चुनाव सुधार समिति (दिनेश गोस्वामी समिति) ने अपनी प्रतिवेदन में, भारत के विधि आयोग ने अपनी 170वीं प्रतिवेदन (1999) तथा संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने अपनी रिपोर्ट 2002 के माध्यम से दल बदल के मामले में मिलने वाली छूट के प्रावधान को समाप्त करने की अनुसंसा की थी ।

किहोतो–होलोहन बनाम जिचिल्हू (1993)

पहले दल परिवर्तन सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय सदन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता था और उसका निर्णय अंतिम होता था जिसे किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती थी, परन्तु

किहोतो–होलोहन के विषय में सर्वोच्च न्यायालय ने इस उपबंध को असंवैधानिक घोषित कर दिया।

52वां संविधान संशोधन 1985

इस संविधान संसोधन में दल बदल के आधार पर सदस्यों के निरर्हता सम्बन्धी प्रावधान किया गया है जिसके तहत 4 अनुच्छेदों में परिवर्तन कर एक नई अनुसूची (10वीं अनुसूची) को जोड़ा गया। इसमें सदस्यों के निरर्हता संबधी निम्न प्रावधान किये गए हैं–

- यदि वह राजनीतिक दल का सदस्य है तो यदि वह स्वयं दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे देता है और यदि वह दल के सचेतक द्वारा व्हिप निरतंर किये जाने के बावजूद निर्देशों के विपरीत मतदान करता है तथा 15 दिन के अंतर्गत दल द्वारा उसे क्षमादान का पत्र जारी ना कर दिया गया हो।
- निर्दलीय सदस्य के विषयों में जो निर्दलीय चुनाव जीता हो परन्तु भविष्य में किसी राजनीतिक दल की सदयता ग्रहण कर लेता है।
- नाम निर्देशित सदस्य के रूप में यदि वह सदन की सदस्यता ग्रहण करने के 6 माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदयता ग्रहण कर लेता है।

ऐसा माना जाता है को 52वां संविधान संशोधन 1985 राजीव गाँधी द्वारा इसलिए लाया गया था ताकि कांग्रेस के 450 के भरी भरकम बहुमत की टूट से रक्षा की जा सके। वास्तव में अब तक दल बदल को रोकने के लिए जितने भी अधिनियम बनाये गए हैं वो दल बदल को रोकने में अब तक प्रभावी सिद्ध नही हुए हैं, अगर हम ध्यान दें तो पाएंगे की दल बदल रोकने का दायित्व सदन के अध्यक्ष को सौंपा गया है जो भले ही उस समय अध्यक्ष के पद का निर्वहन कर रहा हो परन्तु वह अप्रत्यक्ष रूप में दल का सदस्य ही होता है जिससे निष्पक्षता की आशा नही की जा सकती है। कुछ विद्वानों का कहना ह की इसका दायित्व राज्यपाल को (विधानसभा के मामले में) सौंपा जा सकता है परन्तु यहाँ भी हम देखते हैं कि राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करतें हैं जो उनकी निष्पक्षता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है, ऐसे में हम जितना भी दल बदल को रोकने का प्रयास किया जा रहा वह उतना ही उसे सुगम बनाता जा रहा है। भारतीय संसदीय प्रणाली में दल परिवर्तन को अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता जैसा की कुछ खास परिस्थितियों में ब्रिटेन में है । ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स में विशिष्ट मामलों में दल बदल किया जा सकता है जिसे फ्लोर क्रासिंग कहा जाता है जिसमें पार्टी का कोई सदस्य किसी

प्रावधान के विरोध में विपक्षी खेमें में बैठ सकता है जो वहां की परम्परागत मान्यता का एक हिस्सा बन चुका है।

भारत में भी अन्य मामलों को छोड़कर कुछ एक मामलों में अपवाद स्वरूप दल बदल की छूट प्रदान की गई है जिसके लिए कुछ शर्तों का होना आवश्यक है–

- यदि किसी पार्टी के विभाजन के परिणाम स्वरुप उसके 2/3 सदस्य किसी अन्य पार्टी में शामिल हो जाते हैं तो वैसे स्थिति में दल बदल अधिनियम उनपर लागू नहीं होता है (संविधान के 91वें संशोधन 2003 के अनुसार)।
- कोई भी सदस्य जा की सदन के अध्यक्ष के रूप में चुना गया हो जो की पद की मर्यादा और निष्पक्षता हेतु स्वैच्छिक रूप से दल के बाहर चला जाता है और कार्यकाल समाप्ति पर पुनः दल का सदस्य समझा जाता ह पर यह अधिनियम लागू नही होता है।

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव को एक पर्व के रूप में मनाया जाता है जहाँ बहुमत प्राप्त दल द्वारा सरकार का निर्माण किया जाता है जिसे यदि हम अब्राहम लिंकन के शब्दों में– जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन कहा जाता है परन्तु चुनाव संपन्न होते ही हारा हुआ दल जोड़ तोड़ करने में जुट जाता है और अपनी सरकार बना लेता है जो की मिले हुए जनादेश का सीधा उल्लंघन होता है जैसा की अभी हाल ही के वर्षों में गोवा, कर्नाटक, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश में संपन्न हुए चुनावों में देखने को मिला और वर्तमान समय राजस्थान इस ओर अग्रसर है।

आज हमें दल बदल का एक नया रूप स्टेट रेसॉर्ट पॉलिटिक्स के रूप में देखने को मिल रहा है जो की देश काल तथा परिस्थिति के साथ विकसित हुआ है परन्तु उसके मूल में वही निष्ठा का प्रभाव सम्मिलित है जो जनादेश प्राप्त दल को सत्ता से बेदखल कर सत्ता को हथियाने के एक माध्यम के रूप में सामने आया है। इसका समकालीन उदाहरण हमे मध्य प्रदेश में देखने को मिला जहाँ 230 सदस्यीय विधानसभा में जनादेश प्राप्त कांग्रेस के 22 सदस्यों द्वारा इस्तीफा दिए जाने से कांग्रेस सरकार अल्पमत में आ गई जिसके कारण कमलनाथ को इस्तीफा देना पड़ा और बीजेपी के शिवराज सिंह चौहान द्वारा चुनावों में स्पष्ट जनादेश न मिलने के बावजूद पुनः सरकार का गठन किया गया। अतः यह कहा जा सकता है कि आज बहुमत का निर्णय संसद के फ्लोर पर न होकर बड़े बड़े पांच सितारा होटलों में होता है।

♦♦♦♦♦

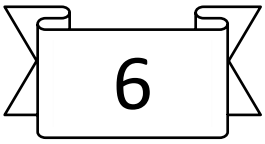

दल–बदल एवं राज्य राजनीति का परिवर्तनीय स्वरूप

मोहिनी मित्तल

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, दिल्ली शिक्षा निदेशालय

लोकतांत्रिक देशों में दलीय प्रणाली का अपना महत्व है विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचन प्रणाली में भाग लिया जाता है जिनमें से लोग अपने जन प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं वह लोकतांत्रिक सरकार में जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं किंतु कई बार प्रतिनिधियों द्वारा विभिन्न कारणों से एक दल छोड़कर दूसरे दल की सदस्यता ले ली जाती है इसे दल–बदल कहते हैं। हाल ही में विभिन्न राज्यों में हो रही राजनीतिक उठापटक दल–बदल के कारण दल विरोधी अधिनियम चर्चा का विषय बन गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् से ही दल–बदल भारतीय राजनीति में देखने को मिलता है 1960–70 के दशक में दलबदल की इस राजनीति को ''आया–राम, गया–राम'' की राजनीति कहा गया। इससे राजनीतिक अस्थिरता देखने को मिली लोकतंत्र में नैतिकता का हनन हुआ इसलिए दलों को मिले जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को अयोग्य घोषित करने हेतु 1985 में दल बदल विरोधी अधिनियम लाया गया।

दल–बदल विरोधी अधिनियम 52वें संविधान संशोधन के माध्यम से लाया गया और इसे संविधान की दसवीं अनुसूची में जोड़ा गया। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान है– यदि कोई सदस्य सदन में अपनी पार्टी के विपक्ष में मतदान करता है अथवा स्वेच्छा से कोई सदस्य अपने राजनीतिक दल की सदस्यता का त्याग करके अन्य दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है तो वह अयोग्य घोषित कर दिया जाता है यदि कोई निर्दलीय सदस्य किसी पार्टी में सम्मिलित हो जाए अथवा मनोनीत सदस्य छः माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है तो उसे दल–बदल के आधार पर आयोग्य घोषित किया जा सकता है।

दल–बदल विरोधी अधिनियम के अनुसार दल–बदल के आधार पर किसी भी सदस्य को अयोग्य घोषित करने का अधिकार सदन के अध्यक्ष को ही होता है यद्यपि इसकी समय सीमा निश्चित नहीं है।

2003 में इस दल बदल अधिनियम में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम 2003 द्वारा परिवर्तन किया गया जिसके तहत कहा गया कि विभाजन के मामले में दल बदल के आधार पर अयोग्यता नहीं मानी जाएगी यदि किसी दल के दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में करते हैं तो इसे दल बदल के आधार पर अयोग्य नहीं माना जाएगा यदि राजनीतिक दल द्वारा किसी सदस्य को निष्कासित कर दिया जाता है तो भी उसे अयोग्य नहीं माना जाएगा इसके साथ ही इसमें यह प्रावधान भी है कि यदि पीठासीन अधिकारी पार्टी द्वारा दिशानिर्देश जारी कर के बावजूद मतदान के मामले में निर्दलीय व्यवहार करें तो भी उसकी सदस्यता पर कोई आंच नहीं आ सकती।

1985 में जब दल–बदल विरोधी अधिनियम पारित किया गया तब प्रावधान था कि अध्यक्ष द्वारा लिए गए निर्णय की न्यायिक–जांच अथवा न्यायिक–पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता किन्तु 1993 में दल–बदल अधिनियम को लेकर ''किहोतोहोलोहन–बनाम जाचिल्हू'' वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि विधानसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम नहीं माना जाएगा, अपितु इसका एक न्यायिक–पुनर्विलोकन भी किया जा सकता है।

दल–बदल अधिनियम को लेकर विभिन्न समितियों व आयोगों ने भी अपने विचार व्यक्त किए 1990 में गठित ''दिनेश–गोस्वामी'' समिति ने कहा कि दल–बदल अधिनियम के तहत को प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराने का निर्णय चुनाव आयोग की सलाह पर राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा लिया जाना चाहिए। विधि आयोग चुनाव आयोग द्वारा भी दल–बदल अधिनियम पर अपनी अनुशंसाएँ की गई। चुनाव आयोग ने भी माना कि दल–बदल के आधार पर सदस्यों को सदस्यों की योग्यता का निर्णय चुनाव आयोग का होना चाहिए।

1994 के ''रवि एस. नाइक बनाम भारत सरकार'' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा, कि मात्र इस्तीफा यह निश्चित करने का आधार नहीं हो सकता कि संबंधित सदस्य अपनी इच्छा से पार्टी की सदस्यता छोड़ी है। किसी सदस्य के औपचारिक तौर पर इस्तीफा न देने पर भी किसी सदस्य के व्यवहार से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

हाल ही में राजस्थान में इसी आधार पर सचिन पायलट व उसके समर्थक विधायकों को अयोग्य घोषित करने के लिए विधानसभा अध्यक्ष को याचिका दी। सचिन पायलट पर दल विरोधी गतिविधियों का आरोप लगाकर पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष व उपमुख्यमंत्री पद से हटाकर उनको व उनके समर्थक 19 विधायकों को विधानसभा अध्यक्ष ने ''कारण बताओ'' नोटिस जारी किया जिसके विरूध पायलट ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की।

कर्नाटक में विधानसभा उप–चुनावों के नतीजों के साथ ही दल–बदल विरोधी अधिनियम की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगता दिखाई दे रहा है। बीते दिनों कर्नाटक विधानसभा अध्यक्ष द्वारा अयोग्य करार दिए गए लगभग सभी विधायक हालिया उप–चुनाव में जीतकर मंत्री पद प्राप्त करने वाले हैं।

मध्यप्रदेश में ''ज्योतिरादित्य–सिंधिया'' द्वारा हाल ही में 24 विधायकों के साथ किया गया दलबदल भी चर्चा का विषय रहा। यह विधायक कांग्रेस पार्टी से इस्तीफा देकर भारतीय जनता पार्टी में शामिल हुए।

कुछ समय पहले मणिपुर में भी दल बदल से जुड़ा एक विशेष मामला देखा गया, जब सत्तारूढ पार्टी के एक मंत्री किसी दूसरी पार्टी में शामिल हो गए थे इसे लेकर 2017 में दल बदल अधिनियम के तहत इन्हें आयोग ठहराया गया। न्यायालय ने अंतरिम आदेश द्वारा मणिपुर सरकार के मंत्री को मंत्री पद से हटा दिया।

वर्तमान में विभिन्न राज्यों में इस प्रकार के दल बदल को दखते हुए दल बदल अधिनियम की प्रासंगिकता को लेकर सवाल उठ रहे हैं, दल बदल अधिनियम सरकार की स्थिरता सुनिश्चित करने नैतिकता व लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए लाया गया था लेकिन अधिनियम बनने के बाद भी जिस तरह दलबदल की घटनाएं हो रही हैं तो सवाल उठता है कि यह क्या यह अधिनियम वर्तमान में प्रसांगिक है।

वास्तविक तौर पर देखा जाए तो इस अधिनियम ने सरकार को स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है अवसरवादी राजनीति पर रोक लगाई है दलों के मध्य आंतरिक लोकतंत्र को बढ़ावा दिया है दलीय अनुशासन पर बल दिया है हालांकि कई बार इसे चुनौती भी दी गई है।

इस अधिनियम का एक नकारात्मक पक्ष यह रहा है कि इस अधिनियम की वजह से दलों के भीतर पार्टी लाइन से अलग किसी विचार को नहीं सुना जाता। सरकार को स्थिरता सुनिश्चित करने के मकसद से बनाए गए अधिनियम विधायकों व सांसदों को अपने विवक से काम करने से भी रोकता है। कुछ विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि दुनिया के कई लोकतांत्रिक देशों में दल बदल विरोधी अधिनियम जैसी कोई व्यवस्था नहीं है जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, जैसे देशों में यदि किसी पार्टी का सदस्य अपने दल के विपरित अपनी बात रखते हैं, अथवा पार्टी लाइन से अलग जाकर मतदान भी करते हैं तो भी अपनी पार्टी में बने रहते हैं।

दल–बदल विरोधी अधिनियम को लेकर एक नकारात्मक पक्ष यह भी है कि दल बदल के मामले में सदन के मुखिया को निर्णय करने में कितना समय लेना चाहिए, इसकी समयावधि अधिनियम में तय नहीं की गई है।

वर्तमान में अवश्यकता है कि विभिन्न समितियों की सिफारिश के आधार पर इसमें कुछ सुधार किए जाएं इस तरह के मामले के निपटारे हेतु एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण बनाया जा सकता है। दल बदल विरोधी अधिनियम में संशोधन करके उसके उल्लंघन पर अयोग्यता की अवधि को 6 वर्ष से अधिक किया जाए इस संबंध में सदन के अध्यक्ष की स्थिति की भी समीक्षा की जानी चाहिए।

यह अधिनियम देश में सुशासन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, इसमें कुछ संशोधन किए जाने की आवश्यकता है, ताकि विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र सबसे सर्वोत्तम लोकतंत्र बन सके।

♦♦♦♦♦

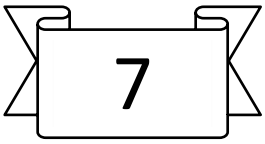

भारतीय राजनीति में दल–बदल एवं विपक्ष की भूमिका

सृष्टि

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविधयालय

"जिसको जाना है, वो जाएगा ही"– राहुल गांधी का यह वक्तव्य स्वाभाविक रूप से भले ही सचिन पायलेट के संदर्भ में कहा गया हो, परंतु यह वक्तव्य काँग्रेस दल पर स्पष्ट रूप से समुचित व सुव्यवस्थित बैठता है। पूर्व के छह वर्षों में विशेषकर अंत के वर्ष में काँग्रेस को देखकर यही लगता है कि उसने पुनरुत्थान की आशाएं छोड़ दी हैं। वास्तव में देश का यह दल आज गिने–चुने राज्यों में सिमटकर रह गया है। राजस्थान सबसे नवीन प्रसंग है। राजस्थान के घटनाक्रम ने भारत के दलीय लोकतंत्र की बार–बार उजागर होती विसंगतियों को पुनः उजागर कर दिया है। काँग्रेस के भीतर के आंतरिक मतभेद के चलते विधानसभा अध्यक्ष के बागी गुट के उन्नीस विधायकों को अयोग्य ठहराने का नोटिस जारी करना, उसके विरोध में पायलट गुट का उच्च न्यायालय जाना और उच्च न्यायालय का यथास्थिति को बनाए रखने का आदेश पारित करना तथा विधानसभा अध्यक्ष का सर्वोच्च न्यायालय जाना और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्य विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श की प्रक्रिया प्रारंभ करने के साथ–साथ असहमति के अधिकार को प्रमुखता से उठाना आदि वे कदम रहे है, जो एक ओर भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति को लेकर गहन चिंतन की ओर अग्रसर करते है।

इससे पहले मध्य–प्रदेश में राजनीतिक आकस्मिक व अप्रत्याशित घटना की पीड़ा अभी कम नहीं हुई थी। एक के बाद एक मिल रहे झटकों के उपरांत भी काग्रेस में इसे लेकर किसी तरह की चेतना का नहीं दिखना और भी निराशाजनक है। काँग्रेस के अधिकतर नताओं का जैसा दृ ष्टिकोण दिखता है, उससे प्रदर्शित होता है यह दल पूर्ण रूप से दिशाहीन हो चुका है। कोई भी संगठन विचारों के आधार पर खड़ा होता है और वो संगठन यदि राजनीतिक दल से संबद्ध है तो वो विचारों से लोगों को जोड़ने का कार्य करता है। स्वतंत्रता से पूर्व व उसके पश्चात काँग्रेस ने यह कार्य समुचित रूप से किया, परंतु उसके पश्चात् काँग्रेस में जो अपरिष्कृत कार्य शुरू हुए, उसने काँग्रेस को अंदर से ही क्षीण कर दिया। समस्या यह है कि जिसे काँग्रेस समाधान समझती है वही उसकी वास्तविक समस्या है– उसका नेतृत्व। पूर्व के एक वर्ष में

काँग्रेस कोई पूर्णकालिक अध्यक्ष नहीं खोज पाई है। लोक सभा चुनाव में पराजय के पश्चात जब राहुल गांधी ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया तो सोनिया गांधी ने आवश्यक रूप से मोर्चा संभाला, परंतु अंतरिम अध्यक्ष के रूप में। उस समय से आज तक समय–समय पर नए अध्यक्ष की मांग तो उठती ही रही है, अपितु इतने अधूरे मन से कि अब तो पार्टी के नेता–कार्यकर्ताओं में भी इसे लेकर कोई जोश नहीं दिखता है। अब काँग्रेस के लिए यह चिंतन करने वाला तथ्य है कि वह स्वयं के लिए एक असीम व अद्भुत नेता नहीं खोज पा रही है, तो जनता उसमें अपना भविष्य कैसे खोजेगी?

काँग्रेस की रीति–नीति से परिचित प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह पद गांधी परिवार के लिए आरक्षित है। राहुल गांधी की ताजपोशी मात्र एक औपचारिकता है, परंतु पराजय के पश्चात् छोड़े गए पद पर पुनः वापसी के लिए कोई ठोस कारण आवश्यक होगा कि राहुल गांधी पार्टी की आवश्यकता है किन्तु पूर्व के एक वर्ष में राहुल गांधी ने ऐसा कुछ नहीं किया, जिससे वो पार्टी के लिए आवश्यक लगे। राहुल गांधी की समस्या यह है कि उनमें नेतृत्व की क्षमता तो प्रदर्शित होती है, परंतु उसमें निरंतरता नहीं दिखती। कभी वो पूण जोश में होते है, तो कभी होश उड़ा देने वाली गलती कर देते है। कभी मैदान में डटे दिखते है तो कभी मोर्चे से गायब हो जाते है। जब उन्होनें अध्यक्ष पद छोड़ा तो उनकी शिकायत थी कि उन्होंने मेहनत तो बहुत को, किन्तु दूसरे नेताओं की कामचोरी उस पर भारी पड़ गई। राहुल गांधी को विश्वास था कि वो इस्तीफा देंगे तो बुजुर्ग हो चली वर्किंग कमेटी भी उनकी देखा–देखी इस्तीफा दे देगी। इससे वे नए स्वरूप से पार्टी का गठन कर सकते थे, परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। यद्यपि इससे पार्टी की युवा एवं बुजुर्ग चिंतन में दूरी खुलकर सामने आई। आज परिस्थिति यह है कि युवा व बुजुर्ग के इस संघर्ष में एक क बाद एक युवा नेता पार्टी से छिटकते जा रहे है। पूर्वोत्तर में हेमंत बिस्वा से प्रारंभ हुआ यह सिलसिला मध्य प्रदेश में ज्योतिरादित्य सिंधिया से हाते हुए अब राजस्थान में सचिन पायलट तक आ गया है। ये सभी वे नेता है, जो जनता को स्वयं स और अपनी पार्टी में जोड़कर रखने की प्रतिभा जानते है। इनके दूर हो जाने से इनसे जुड़ा वोटबैंक भी पार्टी से दूर होता जा रहा है। राजनीति की यह एक आधारिक समझ है कि जब–जब केन्द्रीय नेतृत्व अपने निर्णय में कमजोर होता दिखता है, तब–तब पार्टी के नेता इसी रूप में उपद्रवी हो जाते है। जब तक इंदिरा गांधी शीर्ष पर रही, पार्टी से विप्लव करने वालों को बड़ी कीमत चुकनी पड़ी। राजीव गांधी और सोनिया गांधी के दौर में नेतृत्व समझौतावादी हो गया, शरद पवार, ममता बैनर्जी, जगनमोहन रेड्डी जैसे जनाधार वाले नेताओं ने पार्टी छोड़ दी।

लोकतंत्र में सत्ता बनाने व बिगाड़ने की शक्ति जनाधार में होती है, अपितु उतना ही सुदृढ़ नेतृत्व भी आवश्यक है। भाजपा यदि आज अपराजेय दिखती है तो उसका बड़ा कारण नरेंद्र मोदी जी जैसे सुदृढ़ नेता का अत्यधिक सुदृढ़ नेतृत्व है। एक समय में काँग्रेस का देश में ऐसा परचम लहराता था कि सूर्य काँग्रेस शासित राज्य से उगता था तो दूसरे काँग्रेस शासित राज्य में ही छिपा करता था। वैभवशाली अतीत से पराजित वर्तमान तक पहुँचने में काँग्रेस ने जनता से दूर होने जैसी विभिन्न ऐसी गलतियाँ की, जिन्हें सुधारा नहीं जा सकता है। वर्तमान में भी काँग्रेस अपने इतिहास से कुछ सीखने के लिए तैयार नहीं है।

काँग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व में आज भी ऐसे लोगों का प्रचलन है, जो जनता की पसंद से नहीं बल्कि शीर्षस्थ के आशीर्वाद से राज्य सभा के मार्ग से संसद में पहुंचते है। दूसरी ओर भाजपा है, जिसने जनता से अपना जुड़ाव ऐसा सुदृढ़ किया कि आज के समय में भाजपा सैंकड़ों कार्यकर्ताओं और लोक–सभा की दो सीटों से बढ़कर 11 करोड़ से अधिक कार्यकर्ताओं वाली विश्व की सबसे जनाधार और 303 सीटों वाली पार्टी बन गई। काँग्रेस की समस्या यह है कि उसने देश को शताब्दियों की गुलामी से तो स्वतंत्र कराया, किन्तु स्वतंत्रता के सात दशक पश्चात् भी स्वयं एक परिवार की गुलामी से स्वतंत्र नहीं हो पाई।

एक स्वस्थ्य एवं सुदृढ़ लोकतंत्र हेतु सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी की ऐसी स्थिति चिंताजनक है। इससे सत्ता के निरंकुश हो जाने का खतरा बढ़ जाता है। काँग्रेस की परिवारवाद वाली समस्या अन्य दलों को भी प्रभावित कर रही है। जिससे इन दलों का आंतरिक लोकतत्र भी प्रभावित हो रहा है, हालांकि ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि काँग्रेस को आशाएं व अपेक्षाएं नहीं रखनी चाहिए। अभी भी सैकड़ों अनुभवी नेता और लाखों कार्यकर्ता पार्टी नेतृत्व के लिए निष्ठावान है। आवश्यकता ऐसे नेतृत्व की है जो बड़े निर्णय के साथ–साथ कड़े निर्णय भी ले सके, कार्यकर्ताओं में विजय का विश्वास जगा सके और "जिसकों जाना है वो जाएगा ही" जैसे निराशाजनक वक्तव्यों के स्थान पर "जो जा चुके है, उन्हें वापस लाना है" जैसे सकारात्मक चिंतन पर पार्टी को आगे बढ़ा सके।

अतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता इस विषय पर विचार करने की है कि स्वयं काँग्रेस को यह समझना है कि यदि देश के लोकतंत्र को सुदृढ़ करना है तो सबसे पहले पार्टी के अंतर्गत लोकतंत्र को सुदृढ़ करना होगा।

♦♦♦♦♦

8

भारतीय लोकतन्त्र एवं दल–बदल की राजनीति

जया ओझा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय लोकतन्त्र विचारों की प्रतिस्पर्धा तथा विकल्पों की मूल प्रस्थापनाओं पर आधारित है एवं राजनीतिक दल उन्ही प्रस्थापनाओं के आधार व माध्यम माने जाते हैं। राजनीतिक दल लोकमत एवं लोकनिष्ठा को संस्थागत स्वरूप देने का कार्य करते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि राजनीतिक दलों की क्षमताएँ एवं अपूर्णताएँ लोकतान्त्रिक राजनीति में प्रतिफलित व प्रतिबिम्बित होती हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने तथा उसको स्थिर बनाने का कार्य करते हैं, जिसके द्वारा चुनाव को सार्थकता प्रकट होती है (एलेन बॉल, 1971)। परंतु विगत कुछ वर्षों में राजनीतिक दलों द्वारा भारतीय राजनीति में दल–बदल के माध्यम से स्थिरता से अधिक अस्थिरता एवं अनिश्चितता को बढ़ावा दिया जा रहा हैं, जिसे भारतीय लोकतन्त्र के लिए संकट माना जा सकता है। दल–बदल भारतीय दल व्यवस्था एवं राजनीति का एक कलंकित पृष्ठ है, जिसका निवारण अभी तक संभव नहीं हो सका है।

दल–बदल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जितनी प्राचीन आधुनिक भारतीय राजनीति है, उतना ही प्राचीन भारत में दल–बदल का इतिहास रहा है। 1967 से दिसंबर 1970 के मध्य 4000 विधायकों में 1400 विधायकों द्वारा दल बदला गया। 51 मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ और उनका विघटन हुआ। एक विधायक ने तो चौबीस घंटों में तीन बार दल बदलें जिसे 'आया राम, गया राम' की संज्ञा दी गई (सुभाष कश्यप, 1970)। सुभाष कश्यप ने अपने एक शोध के आधार पर दल–बदल के आंकड़ों को एकत्रित किया, जिसके अंतर्गत उन्होने पाया कि 1967 से फरवरी 1969 के चुनावों के मध्य भारत के राज्यों एवं संघ–शासित प्रदेशों में लगभग 3500 सदस्यों में 550 सदस्यों ने अपना दल बदला। औसतन प्रत्येक दिन एक से अधिक विधायकों ने दल–बदल किया।

यह दल–बदल किसी सैद्धांतिक मतभेद या जन–सरोकारों पर आधारित नहीं था, अपितु मंत्री पद की प्राप्ति के लिए दूसरे दलों में जाना हुआ। दल–बदल की यह प्रक्रिया मात्र राज्य तक ही

सीमित नहीं रही, अपितु इससे केंद्रीय सरकार भी अछूती नहीं रही। 1989, 1996, 1998 में निर्मित सरकार दल–बदल व बाहरी समर्थन के कारण बनती बिगड़ती रही। समकालीन समय में दल–बदल की राजनीति बड़े स्तर पर होने लगी है, क्योंकि बहुमत के अंकगणित ने राजनीतिक दलों को विवश किया है कि वो अपनी सरकार बनाने के लिए अन्य चुने गए प्रतिनिधियों के साथ समझौता करें। परंतु यह समझौता भारतीय लोकतन्त्र के लिए संकट बनता जा रहा है। पूर्ण बहुमत न होने के कारण केन्द्रीय या प्रांतीय सरकारें कठोर एवं हितकर निर्णय करने से कतराने लगी हैं।

दल–बदल के परिणाम

- दल–बदल से शासन में अस्थिरता एवं अनिश्चितता पैदा होती है।
- दल–बदल के परिणामस्वरूप राज्य एवं केंद्र में गठबंधनीय सरकार का निर्माण होता है। गठबंधनीय सरकार में नीति संबंधी एकता का अभाव तथा मतभेद पाया जाता है।
- दल–बदल के कारण प्रधानमंत्री की संस्था का क्षरण होता है।
- दल–बदल के कारण अल्पमत दलों की सरकारों का निर्माण होता है। उदाहरणतः महाराष्ट में शिवसेना की सरकार का निर्माण।
- दल–बदल की घटनाओं के कारण देश में सिद्धांतहीन एवं अवसरवादी राजनीति का सूत्रपात होता है।

दल–बदल विरोधी अधिनियम

दल–बदल की प्रवृत्ति का बुद्धजीवियों द्वारा प्रारम्भ से ही विरोध किया जाता रहा है। परंतु संघीय सरकार द्वारा दल–बदल की समस्या के निवारण के लिए कई बार संवैधानिक संशोधनों का सहारा लिया गया। दल–बदल एक राजनीतिक समस्या है जिसका समाधान अत्यंत आवश्यक है। दल–बदल के कारण 1967 में राजनीतिक अस्थिरता पैदा हुई। इस समस्या का समाधान करने के लिए यशवंतराव चव्हाण पैनल का निर्माण किया गया। इसकी रिपोर्ट के पश्चात 70 के दशक में उमा शंकर दीक्षित एवं शांतिभूषण की अगुवाई में समस्या को समाप्त करने का प्रयास किया गया।

परंतु यह संभव न हो सका। दल–बदल को रोकने के लिए अधिनियम बनाने के कई प्रयास किए गए, प्रथमतः 1973 में, दूसरा 1977 में परंतु कुछ कारणों से कोई भी विधेयक पारित न हो सका। 1985 में तत्कालीन राजीव गांधी सरकार द्वारा संसद में 52वें संवैधानिक संशोधन

अधिनियम लाया गया जो संविधान के दसवीं अनुसूची में समाहित है। इस अधिनियम द्वारा संविधान के चार अनुच्छेदों–101, 102, 190 व 191 में संशोधन किया गया। यह अधिनियम दल–बदल को रोकने के लिए एक प्रभावी अधिनियम था।

इस अधिनियम के अंतर्गत विधायक या सांसद निम्न आधार पर अयोग्य ठहराए जा सकते हैं–

- यदि कोई निर्वाचित सदस्य अपनी स्वेच्छा से किसी राजनीतिक दल की सदस्यता त्याग दे,
- यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाए,
- यदि कोई सदस्य सदन में पार्टीलाइन के विरुद्ध मत करे,
- यदि कोई सदस्य स्वयं को मतदान से पृथक रखे,
- छह महीने की समाप्ति के पश्चात यदि कोई मनोनीत सदस्य राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है।

यदि कोई सदस्य अध्यक्ष के रूप में चुना जाता है तो वह अपने दल से त्यागपत्र दे सकता है। जब वह पद त्यागता है तो पुनः अपने दल में शामिल हो सकता है। इस प्रकार के विषयों में उसे अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता।

यह अधिनियम जिस नियति से लाया गया था उसका परिणाम ठीक विपरीत निकला। इसने दल–बदल की मानसिकता का विकास किया। 1985 के अधिनियम के बाद अस्थिरता का एक नया दौर आरंभ हुआ। पुनः 2003 में केंद्रीय सरकार द्वारा दल–बदल को जड़ से समाप्त करने का निर्णय लिया गया। मंत्रिमंडल ने संविधान के 91वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2003 को स्वीकृति दी।

इस अधिनियम के द्वारा 1985 के अधिनियम के एक तिहाई वाले प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत दल–बदल करने वालों की सदस्यता समाप्त हो जाएगी (सुभाष कश्यप, 1970)। परंतु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विभिन्न कमियों के कारण यह अधिनियम दल–बदल पर रोक नहीं लगा सका।

10वीं अनुसूची का उद्देश्य दल–बदल पर रोक लगाना था परंतु यह अधिनियम प्रभावी सिद्ध नहीं हो सका। क्योंकि यह अधिनियम व्यक्ति के स्थान पर समूहिक दल–बदल को प्रोत्साहित कर रहा था। इसके कारण बड़े स्तर पर दल–बदल को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई। इसी कारण मधु लिमये ने कहा कि खुदरा के बजाय थोक रूप में दल–बदल को मान्यता प्राप्त हो गई है।

दल–बदल को रोकने के लिए सुझाव–

- कोई भी राजनीतिक दल किसी भी दल–बदलू को अपने दल में सम्मिलित न करे।
- दल–बदलुओं का जनता द्वारा बहिष्कार किया जाना चाहिए।
- दल–बदल विरोधी अधिनियम में समय समय पर संशोधित किया जाए।
- निर्वाचन आयोग द्वारा दल–बदल को बढ़ावा देने वाले दल को प्रतिबंधित किया जाए।
- जो दल अन्य दलों के विधायक व सांसदों को तोड़ने के लिए धन का लोभ दे उसे काली सूची में स्थान दिया जाए।

यदि किसी विषय को लेकर लोकतन्त्र में निरंतर प्रश्न उठने लगे, तो इससे लोकतन्त्र में अविश्वास की भावना जन्म लेने लगती है। लोकतन्त्र की उचित पद्वति के लिए ऐसे विवादास्पद विषयों का शीघ्र निपटारा करना अत्यंत आवश्यक है। लोकतन्त्र में संवाद की संस्कृति का अत्यधिक महत्व है परंतु दल–बदल विरोधी अधिनियम के कारण पार्टीलाइन से पृथक अहम विचारों को नहीं सुना जाता है। परिणामस्वरूप अनुशासन के नाम पर दल के स्वामित्व वाली स्थिति का जन्म होता है। शोली सोराबजी का मानना है कि 'रोग को तुलना में उपचार विकृत नहीं होना चाहिए', अर्थात जैसी बीमारी हो, उपचार भी वैसा ही होना चाहिए।

♦♦♦♦♦

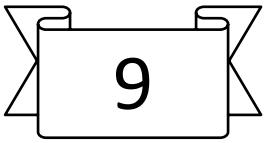

वर्तमान भारतीय राजनीति में दल–बदल विरोधी अधिनियम की विफलता एवं प्रासंगिकता

काजल

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत के संविधान में राजनीतिक दलों के विषय में किसी प्रकार का विचार विमर्श नहीं किया गया है, परन्तु जब से बहु–दलीय व्यवस्था भारतीय राजनीति में उभर कर आयी, भारतीय संसदीय संरचना ने अधिक संख्या में राजनीतिक दलों के साथ प्रारम्भ हुई दल–बदल की घटनाओं को देखा है, जो भारतीय राजनीति में दलों के सदस्यों के मध्य अविश्वास और सत्ता लोभ को दर्शाता है। दल–बदल को "एक व्यक्ति द्वारा अपने राजनीतिक दल के प्रति समर्पण, अपने दल के प्रति अपने दायित्व के त्याग" के रूप में चित्रित किया जाता है अतः हम इसे कार्यालय प्राप्त करने के लिए परिवर्तनीय राजनीतिक पक्षों का अभ्यास भी कह सकते हैं। राजनीतिक अग्रदूतों और राजनीतिक दलों के मध्य अनियंत्रित सहायक का आदान–प्रदान और भ्रष्टाचार सामान्य रहा है। 1967 के चुनावों के पश्चात् ऐसी एक घटना भारत के राजनीतिक इतिहास में देखने को मिलती रही है, जब 142 सांसदों और 1900 विधायकों ने अपने राजनीतिक दलों का आदान–प्रदान किया। जो कि इस लोकतांत्रिक प्रणाली पर एक आलेप है। जिसके पश्चात इस प्रकार के अभ्यास और उसके बाद के परिणामों को नियंत्रित करने के लिए, 1985 में राजीव गांधी सरकार ने भारतीय संविधान में दल–बदल विरोधी अधिनियम प्रस्तुत किया। भारत में दल–बदल विरोधी अधिनियम 52 वें संशोधन में विधि द्वारा भारत के संविधान में सम्मिलित किया गया है, संबंधित अधिनियम दसवीं अनुसूची में पोषित है।

दल–बदल विरोधी अधिनियम एवं राजनीति

चौथे और पांचवें लोकसभा चुनावों के पश्चात् से 'दल–बदल' का राजनीतिक प्रदर्शन प्रमुख रहा है, अर्थात 1967 से 1972 के मध्य जहां भारत ने निम्न सदन के 4000 सदस्यों और राज्य विधान सभाओं के मध्य लगभग 2000 दल–बदल के विषयों का सामना किया है। स्थिति संसद के नियंत्रण की क्षमता से तब बाहर हो गयी, जब लोकसभा के आधे सदस्यों ने एक से अधिक बार

दलों के बीच पुनर्व्यवस्थित किया। परन्तु 1985 के पश्चात यह अधिनियम संसद के सदस्यों (सांसदों)/विधान सभा के सदस्यों (विधायक) को उनकी विधायकी की सदस्यता छीनकर उनकी पार्टी से दल–बदल के लिए दंडित करता है। साथ ही, यह अधिनियम विधायिका के अध्यक्ष को दल–बदल की कार्यवाही का परिणाम तय करने की शक्ति देता है। परन्तु 1985 के पश्चात् की परिस्थिति एवं वर्तमान समय की स्थितियों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम राजनीति के स्वरूप को परिवर्तित नहीं सकता। राजनीतिक दलों को सदैव अधिनियमों को दर किनार करने का एक उपाय मिल ही जाता है।

अधिनियम के अंतर्गत, दल–बदल दो प्रकार से हो सकता है– पहला, जब किसी दल का विधायक अपनी राजनीतिक पार्टी की "स्वेच्छा से सदस्यता" लेता है। अधिनियम इस वाक्यांश को परिभाषित नहीं करता ह, जो अनिवार्य रूप से पार्टी विरोधी गतिविधियों के लिए एक व्यंजना है। न्यायालय ने माना है कि विधायकों के कार्यों का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है कि क्या उन्होंने अपनी पार्टी की सदस्यता छोड़ दी है। परन्तु प्रत्येक घटना की व्याख्या राजनीतिक दलों को अपने संगठनों के अनुचित और असंतुष्ट सदस्यों के विरुद्ध कार्रवाई शुरू करने में एक व्यापक महत्व देता है। अब इस प्रावधान को दरकिनार करने के लिए, विधायकों ने विधायिका से त्याग पत्र दे दिया, जैसा कि इस वर्ष के प्रारम्भ में मध्य प्रदेश में हुआ था।

सांसदों/विधायकों को उनकी निष्ठा को स्थानांतरित करने से रोकने के लिए दूसरा उपाय उन्हें मतदान के लिए दंडित करना है, जो विधायिका में दल की दिशा के विपरीत है। यद्यपि यह दल–बदल का निर्धारण करने के लिए एक अधिक उद्देश्य पूर्ण मानदंड है। परन्तु राजनीतिक दल इसे पसंद नहीं करते हैं। क्योंकि, इस विषय में, विधायकों को दोष देने के पश्चात् दंड मिलता है, जो पहले से ही दलों की इच्छा के विरुद्ध सरकार को गिराने या बचाने के कारण हानि पहुंचाते हैं। एक सरकार के भाग्य का निर्धारण करने से पहले राजनीतिक दलों को संख्या में निश्चितता चाहिए। इसलिए, बचाव के पहले संकेत पर, दल ऐसे सदस्यों को कहीं बाहर बुलाकर उनके प्रति निष्ठावान होना शुरू कर देती हैं।

दल–बदल विरोधी अधिनियम की विफलता को दर्शाती वर्तमान भारतीय राजनीति

1985 के दल–बदल विरोधी अधिनियम को अपने चुन हुए सदस्यों द्वारा राजनीतिक दलों के उग्र परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए कार्यान्वित किया गया था। अधिनियम के पीछे का विचार

सरल है। अधिनियम निर्माताओं ने माना कि विधान सभाओं (विधायकों) या संसद सदस्यों (सांसदों) के दल–बदल को नियंत्रित करने से अधिनियम सरकारों में स्थिरता सुनिश्चित करने में सक्षम होगा। पिछले तीन दशकों में, अधिनियम अपने उद्देश्य में पूरी तरह से विफल रहा है। इसकी विफलता का प्रमाण 14 महीने की कुमार स्वामी सरकार है, जो 2019 जुलाई में गिर गई थी। यद्यपि, अधिनियम के कई अनपेक्षित परिणाम थे। उनमं से एक यह है कि इसने विधायकों के एक बड़े समूह को अपने राजनीतिक दलों से प्रथक होने और एक दूसरे से जुड़ने के लिए कानूनी संरक्षण दिया। उदाहरण के लिए, इस 2019 अक्टूबर के प्रारम्भ में बहुजन समाज पार्टी राजस्थान के सभी छह विधायक कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। सिक्किम में, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने विधान सभा चुनाव में कोई भी सीट नहीं जीती। यह राज्य चुनाव 2019 के आम चुनावों के समय आयोजित किया गया था। पूर्व मुख्यमंत्री पवन चामलिंग के नेतृत्व में सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट पार्टी ने विधानसभा की 32 में से 13 सीटें जोती थीं। तीन महीने पश्चात् उन एसडीएफ विधायकों में से 10 भारतीय जनता पार्टी में सम्मिलित हो गए। जबकि उससे पूर्व भाजपा राज्य में प्रमुख विपक्षी दल बनने के लिए विधानसभा में कोई उपस्थिति नहीं थी।

गोवा राज्य के विधायकों को राजनीतिक निष्ठा को सरलता से स्थानांतरित करने के लिए जाना जाता है। जुलाई 2019 में, 15 में से 10, कांग्रेस के विधायकों ने राज्य विधान सभा को भारतीय जनता पार्टी में स्थानांतरित कर दिया। यद्यपि इस तरह की घटनाएँ राज्य के विधायकों में असामान्य नहीं हैं। 2019 में तेलुगु देशम पार्टी (टीडीपी) के राज्यसभा में छह सांसद थे जो आंध्र प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व करते थे। पार्टी ने राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर, बैलट बॉक्स में अच्छा प्रदर्शन नहीं किया था। आम चुनाव के एक माह पश्चात् पार्टी के छह राज्यसभा सांसदों में से चार भाजपा में सम्मिलित गए थे। ऐसा होने के कुछ कारण हैं। पहला, विधायकों ने दसवीं अनुसूची में प्रतिबंध के आसपास एक मार्ग खोज लिया है। औपचारिक रूप से विश्वास प्रस्ताव में अपने दल के विरुद्ध मतदान करने के स्थान पर, वे दल से त्याग पत्र दे देते हैं। कुछ महीने पश्चात्, जब उप–चुनाव होते हैं, तो वही विधायक पुनः विपक्षी दल के टिकट पर चुनाव के लिए खड़े होते हैं और विधानसभा में लौट जाते हैं। दूसरा, न्यायपालिका ने स्वयं को सिद्ध नहीं किया है। तीसरा, सबसे अधिक विचाराधोन राजनीति में धन की उपस्थिति है। यह व्यापक रूप से बताया गया है कि विधायकों को उनके दलों को त्यागने और सरकार को नीचे लाने के लिए पैसों का प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान समय में राजस्थान में निरंतर राजनीतिक संकट न तो नया है और न ही असामान्य। सरकारों मं अशांति व निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा "पक्षों की अदला–बदली" को सम्मिलित करना निरंतर बढ़ रहा है। इस लेख के अंतर्गत मात्र वर्ष 2019 के उदाहरणों को सम्मिलित किया गया है जिसका यह अर्थ नहीं है कि इससे पहले दल–बदल जैसी घटनाएँ नहीं हुई है अपितु यह एक 30 वर्ष लंबो प्रक्रिया है जिसने भारतीय लोकतंत्र को समय–2 पर कलंकित किया है। इन सभी घटनाओं ने स्पष्ट किया है, दसवीं अनुसूची अब दल–बदल की घटना पर एक प्रभावी जाँच नहीं है जिस कारण अब एक तत्काल पुनर्विचार की आवश्यकता है। जिसमे किसी दल से त्यागपत्र देकर दूसरे दल से जुड़ने वाले विधायकों पर एक निश्चित समय तक चुनावी रोक लगनी चाहिए व चुनावों में धन के प्रभाव को नियंत्रित करने की दृष्टि से एक धन सीमा का निर्धारण होना चाहिए।

♦♦♦♦♦

10

राजनीतिक दलों का नैतिक पतन एवं दल–बदल अधिनियम

प्रियंका बारगल

शोधार्थी, अथर्शास्त्र, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, (म.प्र.)

हितेन्द्र बारगल

सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, गुनौर, जिला पन्ना, (म.प्र.)

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया और इस प्रणाली में राजनीतिक दलों की उपस्थिति अवश्यंभावी है । स्वतंत्रता के बाद हमारे दश की राजनीतिक स्थिति बहुत अच्छी थी, किंतु 1967 के पश्चात् राजनीति में दल–बदल की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई।

दल–बदल से तात्पर्य किसी भी राजनेता द्वारा वर्तमान दल को छोड़कर किसी दूसरे दल की सदस्यता लेने से हैं। वर्ष 1960–70 तक यह प्रवृत्ति भारतीय राजनीति में अधिक समय तक व्याप्त रही थी, जिसका प्रभाव अधिक समय तक रहे। उस समय राजनीति में 'आया–राम, गया–राम' की उक्ति बहुत प्रचलित हो गई थी। जिसका तात्कालिक प्रभाव जन–प्रतिनिधियों की नैतिकता एवं शासन की स्थिरता पर पड़ रहा था, अतः वर्ष 1985 में 52 वें संविधान संशोधन के द्वारा देश में दल–बदल विरोधी अधिनियम पारित किया गया, जिससे समय–समय पर नेताओं द्वारा अपने दल को परिवर्तित करने पर बहुत सीमा तक रोक लग गई, किंतु इस अनुच्छेद के परन्तुक (3 तथा 4) द्वारा दी गई छूट का जन–प्रतिनिधियों द्वारा बहुत लाभ उठाया गया और जिस उद्देश्य के लिए यह अधिनियम लाया गया था, वह कुछ सीमा तक विकृत हो गया। इस अधिनियम द्वारा मात्र व्यक्ति के दल बदलने पर रोक लगी, किंतु सामूहिक रूप से दल–बदल करने पर यह अधिनियम निष्प्रभावी ही रहा। अतः इसे और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु 97 संविधान संशोधन विधेयक पारित करते हुए 16 दिसंबर 2003 को एक नवीन अधिनियम लाया गया, जिसके परिणाम स्वरूप सामूहिक रूप से दल–बदल पर रोक लगा दी गई। अब किसी सदस्य द्वारा किसी भी दल की सदस्यता त्याग करने पर उसे पुनः नए दल के चुनाव चिन्ह पर फिर से निर्वाचित होना पड़ता है। दल–बदल विरोधी अधिनियम को संविधान की दसवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया है, इसका उद्देश्य राजनीतिक लाभ तथा अच्छे पद के लालच हेतु

बार–बार अपने दल को बदलने वाले जनप्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराना है, जिससे संसद की स्थिरता व गरिमा बनी रह सके।

किंतु यदि हम इस अधिनियम के एक पक्ष को ही ध्यान में ना रखते हुए, दूसरे पक्ष को भी समझे तो इस अधिनियम की धारणा पर कुछ सदस्यों का यह मानना है कि हम स्वतंत्र देश में रहते हैं, तथा दल परिवतित करने की इच्छा हमारा व्यक्तिगत विषय है। जन–प्रतिनिधियों का यह कहना है कि वह अपना दल परिवर्तित नहीं करना चाहते, किंतु पारंपरिक व पुराने नेतृत्व में परिवर्तन चाहते हैं। इस प्रकार उनका मानना है की यह अधिनियम अलग धारणा रखने वालों की आवाज को दबाने का हथियार बन गया है, तथा लोकतंत्र में प्रत्येक को समान अधिकार तथा अपने पक्ष को रखने की स्वतंत्रता है, साथ ही विश्व के किसी अन्य देश में ऐसा अधिनियम नहीं है। अन्य देशों में तो बहुत से लोग अपने दल प्रथक होकर दूसरे दल में अपने दल के विरूद्ध मत देते हैं, पर वहां पर इस चीज को गलत नहीं ठहराया जाता है।

वर्तमान संदर्भ में यदि हम राजनीति में नैतिकता की बात करें, तो पूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु बहुत सीमा तक एक दोष मुक्त वातावरण ने नैतिकता को समाप्त कर दिया है। आज वोट की राजनीति का स्तर इतना निम्न हो चुका है कि वोट मांगने के नाम पर तथाकथित दलों द्वारा येन केन प्रकारेण किसी भी व्यक्ति को अपशब्द तक से संकोच नहीं किया जाता है। वर्तमान में यदि हम राजनीति में नैतिकता को ले तो नैतिकता तो बहुत दूर की बात है, आज तो हम देखते हैं कि राजनीति का अपराधीकरण अर्थात ऐसे व्यक्ति जो किसी भी समय किसी ना किसी अपराध में संलिप्त रहे हैं, का राजनीति में चुनाव प्रक्रिया में सम्मिलित होने से है। आज राजनीति में ऐसे–ऐसे बाहुबली उच्च पदों पर आसीन हो गए हैं कि नेता तथा आपराधिक तत्व एक ही सिक्के के दो पहलु बन चुके हैं। इसके अतिरिक्त चुनावी वर्ष में जिस तरह से बहुत बड़ी मात्रा में अनुचित रूप से कमाए गए धन का प्रयोग या कहे कि धन की बर्बादी की जाती है, यह भ्रष्टाचार का ही एक रूप है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके विपरीत यदि चुनाव साफ–सुथरे तरीके से बिना भ्रष्टाचार के या मतदाताओं को बिना लालच या गलत तरीके से भ्रमित करते हुए ना किये जाए तो यह नैतिकता से पूर्ण राजनीति होगी, जिसकी कल्पना करना ही बहुत अच्छा अनुभव है। देश के राजनेता ही देश का एवं जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं, यदि देश के प्रतिनिधि ही अपने विचारों पर एक नही रह पाएंगे, तो देश की अर्थव्यवस्था किस प्रकार सुचारू रूप से चल पाएगी?

इस प्रकार देश के विकास के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन कुशल नेतृत्व के द्वारा ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है, किंतु यदि यही नेतृत्व निरंतर अपना दल बदल करते रहे, तो ना देश का भविष्य सुरक्षित रह पाएगा और ना ही देश का आर्थिक विकास हो पाएगा। अतः दल–बदल पर रोक अधिनियम द्वारा ही जनप्रतिनिधियों अपनी पार्टी तथा उसके मूल्यों के प्रति निष्ठा बढ़ा सकते हैं, जिससे संबंधित पार्टी में अनुशासन बढ़ता है। शासन पर अधिक एकाग्र होकर ध्यान दिया जा सकता है, तथा भ्रष्टाचार कम होने से नैतिकता बढ़ती है, जो हमारे देश के पारंपरिक मूल्यों को सहेजने का काम अच्छे से करती हैं।

अतः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि दल–बदल अधिनियम द्वारा जनप्रतिनिधियों कि बार–बार दल बदलने की प्रवृत्ति पर अंकुश आवश्यक रूप से लगा है, किंतु अभी भी यह कुछ सीमा तक ही प्रभावी है। अतः आवश्यकता है, इस अधिनियम को और अधिक कठोर करने की तथा राजनीतिक स्थिरता लाने की जिससे सामान्य जनता का लोकतंत्र में विश्वास बना रह सके। 1989 से 1989 तक किसी भी राजनीतिक दल को पूर्ण रूप से बहुमत प्राप्त नहीं हो सका, किन्तु 2014 में भारतीय जनता को पूर्ण रूप से बहुमत प्राप्त सरकार केंद्र में प्राप्त हुई, जिससे जनता में उत्साह का संचार हुआ है। किंतु वर्तमान में कछ राज्यों में तथाकथित दल–बदल की प्रथा निम्न स्तर पर विद्यमान हैं, जिसके कारण आए दिन राजनीति में उथल–पुथल देखने को मिलती है। इस प्रकार केंद्र व राज्यां में दल–बदल राजनीति में न पड़कर एक मजबूत एवं पूर्ण बहुमत की सरकार बनती है, तो देश के साथ–साथ राज्यों का भी उपयुक्त विकास संभव हो सकेगा, जिससे देश विकासशील से एक विकसित देश की ओर अग्रसर हो सकेगा।

♦♦♦♦♦

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-110007